भवन्स
नवनीत
जुलाई 2020
30 रुपये
समय ... साहित्य ... संस्कृति ...
ताकि मनुजता बची रहे

विवेक का अंकुश

हमने अपने लिए एक संविधान बनाया है जो देश के सामान्य नागरिक से लेकर देश के राष्ट्रपति तक को न केवल सांविधानिक अधिकार देता है, बल्कि वह रास्ता भी दिखाता है, जिस पर चल कर व्यक्ति से लेकर राष्ट्र तक सम्पूर्ण विकास के लक्ष्य तक पहुंच सकता है. लेकिन, सांविधानिक अधिकार के साथ ही सांविधानिक कर्त्तव्य भी जुड़े हैं. इन्हीं कर्त्तव्यों का एक महत्वपूर्ण अंग अपने विवेक का इस्तेमाल करना है. संविधान अधिकार देता है, पर उसके साथ ही यह अपेक्षा भी करता है कि व्यक्ति अथवा नागरिक अपने कर्त्तव्यों की पूर्ति के लिए अपने विवेक का सम्यक उपयोग भी करेगा. नागरिक का, और सांविधानिक पदों पर बैठे व्यक्तियों का विवेक समाज और राष्ट्र की ताकत होता है. विवेक का अर्थ है अपने सहज और सम्यक ज्ञान से सही और गलत का आकलन करना. देखा जाये तो यह विवेक-बुद्धि ही व्यक्ति अर्थात मनुष्य को बाकी प्राणियों से पृथक ही नहीं करती, उसे सृष्टि में एक विशिष्ट स्थान भी देती है. इसी विवेक का अंकुश मनुष्यता की एक पहचान भी है.

(कुलपति के.एम. मुनशी भारतीय विद्या भवन के संस्थापक थे)

अध्यक्षीय

अस्तित्व विचारों का प्रकटीकरण है

मानसिक एवं प्राकृतिक विज्ञान में लगातार प्रयोग हो रहे हैं और हर नयी खोज के साथ मनुष्य अपने सम्भव-लक्ष्य की ओर एक कदम आगे बढ़ जाता है. हम यह पाते हैं कि व्यक्ति उन विचारों का ही सम्मिलित प्रतिरूप होता है, जिन्हें वह अपने जीवन में जीता है.

दृश्य जगत का नियंत्रण एक अदृश्य एवं अबतक अव्याख्यायित सत्ता करती है. अबतक हमने इस सत्ता को ईश्वर के रूप में ही समझा है. अब वैज्ञानिक बता रहे हैं कि जो कुछ भी अस्तित्व में है, यह उसका विस्तृत सत्व अथवा मूल तत्व है– अनंत अथवा सार्वभौम मन.

अनंत एवं सर्वशक्तिमान होने के कारण इस सार्वभौम मन के पास असीम साधन हैं और चूंकि यह सर्वव्यापी भी है, इसलिए इस निष्कर्ष पर पहुंचना स्वाभाविक है कि हम उस मन की अभिव्यक्ति हैं.

अवचेतन मन के साधनों की समझ तथा स्वीकृति से यह संकेत मिल जाता है कि अवचेतन तथा सार्वभौम के बीच मात्र कोटि का अंतर है. इनमें वही अंतर है जो पानी की एक बूंद तथा समुद्र में है. इस तथ्य को समझकर हम तत्काल सर्वशक्तिमान के संपर्क में आ जाते हैं.

अवचेतन-मन, सार्वभौम-मन तथा चेतन-मन को जोड़ने वाला सेतु है, इससे क्या यह स्पष्ट नहीं होता कि चेतन-मन समझ-बूझकर ऐसे विचारों का संकेत दे सकता है जिन्हें अवचेतन-मन सक्रिय बनाता है, और अवचेतन-मन सार्वभौम से जुड़ा है,

इसलिए क्या यह स्पष्ट नहीं है कि इसकी गतिविधियों की कोई सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती?

इस सिद्धांत की वैज्ञानिक समझ से प्रार्थना की शक्तियों से प्राप्त होने वाले शानदार परिणामों को समझा जा सकता है. इस विधि से प्राप्त परिणाम विधाता की कोई देन नहीं है, बल्कि प्राकृतिक नियम से होने वाली प्राप्ति है. इसलिए, इसमें धार्मिक अथवा रहस्यात्मक कुछ नहीं है.

विचार ही एकमात्र वास्तविकता है, जब विचार बदलता है तो सभी बाह्य अथवा भौतिक स्थितियां बदलनी चाहिए, तभी उनके सृष्टा से संगति बनी रहेगी. यही सृष्टा विचार है. लेकिन यह विचार स्पष्ट, स्थिर, निश्चित तथा अपरिवर्तनीय होना चाहिए. कोई एक पग आगे और दो पग पीछे नहीं ले सकता, न ही नकारात्मक विचारों से उत्पन्न होने वाली नकारात्मक स्थितियों के निर्माण में जीवन के बीस-तीस साल लगाकर यह अपेक्षा कर सकता है कि बीच-पच्चीस मिनट के सही सोच से सबकुछ मिट जायेगा.

इस अनुशासन, इस विचार-परिवर्तन एवं मानसिक प्रकृति से न केवल वे भौतिक वस्तुएं मिलेंगी जो सर्वोच्च एवं सर्वश्रेष्ठ कल्याण के लिए आवश्यक हैं, बल्कि बेहतर स्वास्थ्य और अधिक समन्वय भी प्राप्त होगा.

सुरेन्द्र लाल मेहता

(सुरेंद्रलाल जी. मेहता)
भारतीय विद्या भवन के अध्यक्ष

भवन्स
नवनीत

समय... साहित्य... संस्कृति...

68 वर्षों की समृद्ध परम्परा की अगली कड़ी

वर्ष : 5 अंक : 11 ● जुलाई 2020

सम्पादकीय कार्यालय

भारतीय विद्या भवन

क.मा. मुनशी मार्ग, चौपाटी, मुंबई 400007

फ़ोन : 022-23634462/ 1261/ 1554

फ़ैक्स : 022-23630058

प्रसार विभाग : 022-23514466/23530916

ई-मेल : navneet.hindi@gmail.com

bhavansnavneet@gmail.com

एक नज़र

आवरण-कथा

आलेख

कथा

कविताएं

समाचार

आओ, मिलकर प्रार्थना करें

● होमी दस्तुर

मिलजुल कर एक साथ की गयी सामूहिक प्रार्थना में बहुत ताकत होती है. जब लाखों लोग पूरी श्रद्धा और विश्वास के साथ ईश्वर से प्रार्थना करते हैं तो उन्हें ईश्वर और देवी मां से उत्साहवर्धक प्रतिसाद मिलता ही है. इस दैवी प्रक्रिया में किसी भी प्रकार के संदेह की थोड़ी-सी भी गुंजाइश नहीं है.लेकिन यह ज़रूरी है कि हमारा विश्वास सच्चा हो, अडिग हो.

पारसी धर्म, जिसका मैं अनुयायी हूं, के अनुसार 'हमबंदगी' यानी सामूहिक प्रार्थना की ताकत रेखागणितीय अनुपात में बढ़ती है. हिंदुत्व, इस्लाम और ईसाइत समेत दुनिया के सारे धर्म इस सचाई को रेखांकित करते हैं. मुझे इस बात की हैरानी है कि धर्म की लगातार दुहाई देने वाले हमारे सत्ताधिकारियों ने अब तक इस बारे में सोचा क्यों नहीं. सामान्य समय की तुलना में पिछले कुछ वक्त से जय श्रीराम का नारा हवा में ज़्यादा ही गूंजता रहा है. और अब, अपने जन्मदाता को भूल कर यह कह रहे हैं कि हम विज्ञान और बुद्धि के सहारे हम कोरोना को हरायेंगे! अबतक के नतीजे तो इसका उल्टा ही बता रहे हैं.

विज्ञान और हमारी प्रशासनिक क्षमता बुरी तरह असफल सिद्ध हुई है. अब धरती से कोरोना को मिटाने के लिए हमें दैवी शक्तियों की शरण में जाना होगा. यह काम एक साथ मिलकर ही पूरा किया जा सकता है. यदि सारा देश मिलकर ईश्वर से प्रार्थना करे तो इसमें कोई शक नहीं कि दैवी शक्तियां मुसीबत में फंसी मनुष्य जाति की मदद करेंगी.

प्रधानमंत्री को चाहिए कि वे पूरी निष्ठा के साथ इस बारे में देश की जनता को मुखातिब हों. हमें बताया गया है कि ताली बजाने, थाली बजाने और दीये जलाने के उनके आह्वान को जनता का भारी समर्थन मिला था. अब उन्हें देश से कहना चाहिए कि वह एक निश्चित समय पर प्रार्थना करे. किसी रविवार

को सबेरे ग्यारह बजे यह प्रार्थना की जा सकती है. पहले व्यक्ति अपने धर्म और आस्था के अनुसार दस मिनट या उससे अधिक अवधि तक प्रार्थना करे. फिर एक निश्‍चित समय पर सब अपनी-अपनी भाषा में ईश्‍वर से आग्रह करें कि वह कोरोना को समाप्त करे और विश्‍व को इस खतरनाक स्थिति से उबारे. समय बीतता जा रहा है. अगर हालात यही बने रहे तो इस बात की पूरी आशंका है कि वायरस की तुलना में कहीं ज़्यादा लोग भूख से मर जायेंगे. गरीबों की पीड़ा असहनीय होगी.

इस सामूहिक प्रार्थना को एक से अधिक बार करना होगा. हर उपलब्ध मीडिया से देश के नागरिकों को इस बारे में स्पष्ट और पर्याप्त जानकारी देनी होगी.

मेरा विश्‍वास करें, इस सामूहिक प्रार्थना का निश्‍चित परिणाम निकलेगा और कोरोना का लगातार ऊपर जाता ग्राफ धीरे-धीरे नीचे आयेगा और अंततः यह संकट समाप्त हो जायेगा.

महत्वपूर्ण बात सिर्फ यह है कि प्रार्थना पूरे विश्‍वास और निष्ठा के साथ की जाये. इसमें संशय और अविश्‍वास के लिए कोई स्थान नहीं है. यह ज़रूरी नहीं कि संशयवादी इसमें शामिल हों ही. नास्तिक चाहें तो कह सकते हैं : हे प्रभु, यदि तुम हो तो आकर हमारी मदद करो!

निष्ठा से प्रार्थना करने वाले कह सकते है कि हे ईश्‍वर, हम विश्‍वास दिलाते हैं कि सत्य, प्यार, करुणा, मनुष्यता, गरीबों की सेवा आदि के भाव अपने भीतर विकसित करने के लिए पूरी ईमानदारी से कोशिश करेंगे. हम प्रकृति को नष्ट नहीं करेंगे. पर्यावरण को हानि नहीं पहुंचायेंगे.

यह समय है जब अपने गर्व, अज्ञान, राजनीति और सत्ता की दौड़ का कीचड़ उछालने के बजाय हम अटूट और पूरे विश्‍वास के साथ ईश्‍वर की शरण में जायें.

हे ईश्‍वर, हमें वह विनम्रता और समझ दे जिससे हम अच्छे और बुरे में भेद कर सकें, यह समझ सकें कि वास्तव में अच्छा क्या है, और क्या मात्र अच्छा लगता है.

करोड़ों लोगों की सामूहिक प्रार्थना ही वायरस को मनुष्य का उत्तर है!

पाठकनामा

जवाहरलाल नेहरू को सिर्फ एक राजनेता मानने वालों के लिए मई के 'नवनीत' में छपा उनका लेख आंख खोलने वाला है. 'कमल के फूल पर बैठी करुणा' शीर्षक वाला यह लेख बुद्ध के बारे में तो बहुत कुछ बताता ही है, स्वयं नेहरूजी के व्यक्तित्व का कम परिचित चेहरा भी दिखाता है. बुद्ध के निराशावाद से असहमत तो वे थे, पर वे यह भी मानते थे कि बुद्ध जैसे व्यक्तित्व को जन्म देने वाला देश आंतरिक ऊर्जा का अक्षम भंडार है.

● जयंति पारीख, जोधपुर

नवनीत का जून अंक पढ़ा. अतीत की कथावस्तु पर लिखी राजिंदर सिंह बेदी जी की कहानी वर्तमान को जीवंत करती प्रतीत हुई. अनुवाद भी सराहनीय है.

कमलेश्वर जी का संस्मरण पढ़ते-पढ़ते स्मृति आयी और खिड़की से झांक कर चली गयी. गद्य को टुकड़े-टुकड़े वाक्यों में अंकित कर उसे कविता की संज्ञा देने की प्रक्रिया से मैं सहमत नहीं हूं.

पहले आप वाल्मिकी रामायण के अंश प्रकाशित किया करते थे. क्या यह सम्भव हो सकता है कि सम्पूर्ण ग्रंथ एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित कर सकें.

● सुबोध मिश्र

मैं समझ रहा था कोरोना के चक्कर में बाकी पत्रिकाओं की तरह 'नवनीत' भी नहीं छप रहा. अचानक कहीं से लिंक मिल गया और मई-जून के अंक साथ-साथ दिख गये. पहले तो मई के अंक की आवरण-कथा के विषय के लिए बधाई स्वीकारें. संघम् शरणम् गच्छामि बुद्ध के संदेश के अंत में आता है, पर उसे महत्व देकर आपने आज की स्थितियों को देखते हुए बहुत महत्वपूर्ण पहल की है. साझेपन को समझने और महसूस करने का आपका आह्वान बहुत माने रखता है. इसके साथ ही अहम् का विगलन हमारी ढेरों समस्याओं को सुलझाने का मार्ग बन सकता है. बहुत-बहुत बधाई इस अंक के लिए.

● सुशील भटनागर, दिल्ली

आपकी पहली सीढ़ी सचमुच एक ऊंचाई तक ले जाने वाली होती है. मई अंक में दरवाज़ा खोलने की बात कहती कविता बहुत प्रेरणादायक है. पर कवि का नाम नहीं दिया आपने ? **● शिवनारायण, पटना**

पहली सीढ़ी

।।आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः।।

आदमी ज़िंदा रहे

● संजय मासूम

आदमी में आदमी ज़िंदा रहे
ज़िंदगी में ज़िंदगी ज़िंदा रहे.

तीरगी हारेगी मेरे यार बस
ध्यान रखना रोशनी ज़िंदा रहे.

लाख आये अब नदी दहलीज़ पर
इन लबों पर तिश्नगी ज़िंदा रहे.

फिर खिला लेंगे मुहब्बत के कंवल
ज़हन में, दिल में नमी ज़िंदा रहे.

ज़िंदगी इतनी अलामत छोड़ दे
सब कहें, हम भी कभी ज़िंदा रहे.

मर गये सच बोलने वाले मगर
हर ज़माने में वही ज़िंदा रहे.

इश्क की कोई कहानी हो जहां
वो मोहल्ला, वो गली ज़िंदा रहे.

दफ्न हो जायें उदासी और दुख
और हम सबकी हंसी ज़िंदा रहे.

सम्पादकीय

ताकि आदमी ज़िंदा रहे

'सुंदर है सुभग, सुमन सुंदर, मानव तुम सबसे सुंदरतम', सुमित्रानंदन पंत की यह पंक्ति मनुष्य की श्रेष्ठता और गरिमा का बखान मात्र नहीं है, यह उन अपेक्षाओं का स्पष्ट संकेत भी है, जो इस सुंदरतम प्राणी से प्रकृति करती है. यहां प्रकृति उस समूची सृष्टि का पर्याय है, जिसके केंद्र में आज मनुष्य है. इस मनुष्य की सुंदरता का अर्थ उन गुणों की अभिव्यक्ति है, जो व्यक्ति को इंसान बनाते हैं– इंसान अर्थात वह जो मनुष्यता को परिभाषित करे. मनुष्यता की सीधी-सादी परिभाषा यह है कि मनुष्य वही है, जो दूसरे को अपने जैसा समझ सके; दूसरे की पीड़ा से जिसे पीड़ा का अनुभव हो, जो दूसरे की खुशी से स्वयं को भी थोड़ा खुश महसूस कर सके.

मनुष्य की जय-यात्रा आज जिन मुकामों को छू रही है, उनमें उपलब्धियों के हिमालय अवश्य हैं, मनुष्य इन सफलताओं पर गर्व भी कर सकता है, पर कहीं न कहीं भीतर ही भीतर कुछ दरकता-सा भी लग रहा है. सदियों के संघर्ष के बावजूद मनुष्य रंग-भेद के अभिशाप को झेल रहा है; छोटे और बड़े की अजीब-सी अवधारणाओं से घिरा हुआ है. न्याय की बात तो बहुत होती है हमारे समाज में, पर ऐसी किसी व्यवस्था को हम स्वीकार नहीं करना चाहते जिसमें हर व्यक्ति को न्याय मिले, जिसमें हर व्यक्ति को लगे कि उसके साथ न्याय हो रहा है. भौतिक प्रगति के नये शिखर हम रोज़ छू रहे हैं, चांद और मंगल तक पहुंच है हमारी, अंतरिक्ष में बस्तियां बसाने के सपने हमें पूरे होते लगते हैं, लेकिन इस जय-यात्रा में हम कितना कुछ खोते चले जा रहे हैं, कितना कुछ पीछे छूटता जा रहा है, जो हमारे साथ रहना चाहिए, शायद इसका अहसास हम करना ही नहीं चाहते.

अपने आप को हमने उन छोटे-छोटे घेरों का बंदी बना लिया है, जिनकी रेखाएं हम खुद खींचते हैं. ये घेरे हमारे स्वार्थों के हैं, उस लालच के हैं जो हमें दूसरे से जुड़ने नहीं देता. दूसरे से जुड़ने का अर्थ ही है 'दूसरेपन' से मुक्ति की कोशिश. धर्म, जाति, वर्ण, वर्ग के आधार पर मनुष्य को बांटना वस्तुत: अपने आप को उस अपराध का हिस्सा बनाना है, जो हमें मनुष्यता की परिभाषा से दूर करता है. ऐसा अपराध हम रोज़ कर रहे हैं और विडम्बना यह है कि हमें लगता ही नहीं कि हम अपराधी भी हो सकते हैं. हम अपराधी हैं, जान-बूझकर उस करुणा की अवहेलना करने के जो मनुष्यता की मूल पहचान है. हम अपराधी हैं क्षमा के उस भाव को अपने भीतर सुरक्षित न रख पाने के, जो हमें अपने भीतर झांकने की प्रेरणा दे सकता है. अपने भीतर झांक कर ही हम इस अहसास को जी सकते हैं कि जो कमियां हम दूसरों में देख रहे हैं, जिनके लिए हम दूसरों को दोषी मान रहे हैं, उनसे हम स्वयं भी मुक्त नहीं हैं. यह अहसास ही हमें अपने भीतर के आदमी को जगाने का अवसर और प्रेरणा दे सकता है. हम सभी 'आत्म' और 'पर' के भावों से ऊपर उठकर मनुष्य की समानता के सिद्धांत में विश्वास करने लायक बन सकते हैं.

आज मनुष्यता का सबसे बड़ा संकट अपने भीतर के आदमी को ज़िंदा रखने का है. इस संकट से मुक्ति तभी हो सकती है जब हम पहले इस संकट को पहचानें. आदमी में आदमीयत को ज़िंदा रखने की एक भूख जगनी चाहिए. आइए, उस भूख को जगाएं. आइए, आदमी बने रहने की कोशिश करें. मनुष्यता के समक्ष आये संकट ही अवसर होते हैं ऐसी कोशिशों को सफल बनाने के. संकट हमारे सामने है. आइए, उसे हराएं.

आवरण-कथा

मशीन के भीतर 'चिप' बन कर रह जायेगा मानव ?

● रामशरण जोशी

'सफलता महत्वाकांक्षा को जन्म देती है, और हमारी हाल ही की उपलब्धियां, और नये दु:साहसिक लक्ष्यों को हासिल करने के लिए अब मानव-जाति को उकसा रही हैं. सम्पन्नता, स्वास्थ्य और समरसता के अभूतपूर्व स्तरों को प्राप्त करने के बाद तथा विगत के रिकॉर्ड व वर्तमान मूल्यों को देखते हुए अब मानवता अमरता, आनंद और दिव्यता को अर्जित करना चाहेगी... अब हम वृद्धाअवस्था और यहां तक कि मृत्यु पर विजय प्राप्त करना चाहेंगे.' (युवाल नूह हरारी, होमो देउस-भावी कल का एक संक्षिप्त इतिहास, पृ. 24)

वास्तव में स्वयं में झांकने का अलग ही आनंद होता है. यह बिल्कुल निर्मल होता है. इसकी प्राप्ति मुझे कोरोना कारावास में हुई. यूं तो कारावास में महान रचनाएं लिखी जा चुकी हैं. कोई कालजयी रचना मैं लिख सकता हूं, मुझमें इसकी सामर्थ्य नहीं है. लेकिन इस काल में बाहर-भीतर उठते सवालों से मैं टकरा सकता हूं. लॉकडाउन के विभिन्न चरणों ने बेशुमार सवालों को जना है जिनका सरोकार निजीवृत्त से है तो लोकवृत्त से भी. सबसे बड़ा सवाल यह है कि ऐसे बहुआयामी संकट के दौर में व्यक्ति, समाज और राज्य के सम्बंध कैसे होने चाहिए ? इस दौर ने तीनों इकाइयों को स्वतंत्र और संयुक्त रूप से भी अपनी अपनी भूमिकाओं को मंचित करने के अवसर

दिये हैं. तीनों को स्वयं की भूमिकाओं में झांकने के अवसर मिले हैं. सारांश में, तीनों को ही अग्निपरीक्षा के चरण से भी गुजरना पड़ा है. इस प्रक्रिया में कौन कितना सफल या असफल रहा है, इसका फैसला इतिहास पर छोड़ देते हैं. लेकिन, एक वैयक्तिक इकाई के नाते अपनी भूमिका को तो तोल ही सकता हूं. हालांकि समाज और राज्य की भूमिकाओं से व्यक्ति की भूमिका कम-अधिक प्रभावित होती रहती है. एक प्रकार से तीनों परस्पर संबद्ध भी हैं, और स्वतंत्र भी. तीनों इकाइयों के सम्बंधों की सीमाओं, आकार और क्रियात्मक भूमिका का निर्धारण तत्कालीन परिस्थितियों, भौतिक शक्तियों और समाज व राज्य के नेतृत्व के चरित्र पर काफी कुछ निर्भर रहता है. उदाहरण के लिए, प्रवासी श्रमिकों के प्रति राज्य नियंत्रित संस्थाओं के व्यवहार को जितना संवेदनशील होना चाहिए था, उतना नहीं रहा. उसके व्यवहार में एक यंत्रवत औपचारिकता अधिक दिखाई देती है. देश की आला अदालत में उसका एक कानूनी कारिंदा जब यह कहता है कि श्रमिक-पक्षधर 'क़यामत के दूत' और 'गिद्ध' हैं और हाई कोर्ट 'समानांतर सरकारें' चला रहे हैं तब राज्य की संवेदनशीलता स्वत: उजागर हो जाती है. जब राज्य केवल 'अर्थोन्मुख' व 'अर्थोपार्जन' की भूमिका के वशीभूत हो जाता है तब उसके लिए व्यक्ति व समाज 'साधन' का रूप ले लेते हैं. दोनों अर्थ सत्ता व राजसत्ता प्राप्ति के 'कल-पुर्ज़ा' बन जाते हैं. इस स्थिति में समाज का प्रभु वर्ग भी 'व्यक्ति' या 'इकाई' और 'मूल उत्पादक वर्ग' को 'माध्यम', 'प्रोडक्ट' और 'उपभोग' रूपांतरित करने लगता है. यही वजह है कि करोड़ों श्रमिकों के प्रति राज्य का नियंता वर्ग प्राय: निस्पृह बना रहा. यहां तक कि शुरू में प्रधानमंत्री ने प्रवासी श्रमिकों के अंतहीन कष्टों-यातनाओं को 'तप' और 'त्याग' की संज्ञा दे डाली थी. जब बहुत आलोचना हुई तब उन्होंने अपनी दृष्टि बदली और प्रवासी श्रमिकों के दुख-दर्द को गम्भीरता से लिया. जहां तक चेतना में 'तप', 'त्याग' जैसे शब्दों की उत्पत्ति का प्रश्न है, इसका उत्तर यही है कि यदि राज्य जनोन्मुखी व संवेदनशील रहता तो प्रभुवर्ग की प्रतिक्रिया दूसरी होती. क्या ये कॉर्पोरेट वर्ग से भी 'तप' और 'त्याग' के लिए कहेंगे? कतई नहीं कहेंगे क्योंकि यही वर्ग राज्य के चरित्र का निर्धारक बन गया है. विडम्बनाओं, विरोधाभासों और उत्तर सत्य राजनीति से भरे काल में मेरी सबसे बड़ी चिंता रही है मनुष्य और मनुष्यता को सुरक्षित रखना. राज्य को विपथगामी बनने से तभी बचाया जा सकता है, जब मनुष्य और मनुष्यता सुरक्षित व सम्पोषित रहे. इससे जुड़ा एक अनुभव है जिसे यहां साझा करना मौजूं रहेगा

●●●

किस्सा कुछ पुराना है. पर जिस विषय पर कुछ अपने विचार सामने रखूंगा उसके लिए तो किस्सा आज भी ताज़ा है. हुआ यह कि एक घोंसले ने मुझ समेत पूरे परिवार की नाक में दम कर रखा था. कबूतर-कबूतरी आते और तिनका तिनका चुन घोंसला बनाते रहते. शुरू-शुरू में यह सिलसिला मोहक लगा. घोंसले के बाशिंदों की गतिविधियां काफी आकर्षक लगतीं. बच्चे ध्यानपूर्वक देखते. गर्मियों में उनके लिए मिट्टी के चौड़े से पात्र में पानी भर कर रख दिया करते थे. प्रजनन क्रिया भी उसी नीड़ में होती. शोर भी होने लगता. चूंकि मेरे अध्ययन रूम के कूलर के ऊपर उनका आशियाना था इसलिए मैं धीरे-धीरे डिस्टर्ब होने लगा. उनकी फैलाई गयी गंदगी को कब तक साफ़ करता. 'इस घोंसले को यहां से हटाना है', मैंने फैसला कर लिया.

घोंसले को हटाने के कई जतन किये; झाड़ू मार कर घोंसला उजाड़ दिया. देखता क्या हूं, कुछ रोज़ शांत रहने के बाद तिनकों का घर फिर वहीं था. इस बार और भी बड़ा था. कबूतरों की इस हरकत पर तनिक क्रोधित भी हुआ. निर्बलों पर फिर अपनी अक्ल का बुलडोज़र चलाया. इस दफा बाहरी सहायक की मदद से कूलर के ऊपरी हिस्से को कपड़े और गत्ते से ढंकवा दिया. मैं अब निश्चिंत-सा महसूस करने लगा. कुछ दिन राहत में बीते होंगे, फिर वही तमाशा! मेरी किलेबंदी को उजाड़ कर उनका आशियाना फिर उग आया. मैं आपे से बाहर हो गया, 'इंसान से टक्कर लें, निरीह कबूतरों की यह मज़ाल!' इस हरकत पर मैंने खुद को ही ललकार दिया. अभेद्य किलेबंदी के लिए आस-पड़ोस के साथ गम्भीर मंत्रणा की. फिर सर्वसम्मत-उपाय सामने आया, 'जोशी जी, तीनों तरफ कूलर के जाली की दीवार खड़ी कर दें. हवा भी आती रहेगी और कबूतर चोंच भी नहीं मार सकेंगे.' 'यह आइडिया अच्छा लगा. काफी खर्चे से जालियों की हवादार दीवार चुनी गयी. तब जाकर मैं बेफिक्र विचारों-शब्दों से खेलता और उनके घर बनाता आ रहा हूं. लेकिन क्या मेरे निरीह शत्रु परास्त हो चुके हैं? जी नहीं, उन्होंने पड़ोसी के कूलर पर अपना आशियाना बना लिया है; उनका अस्तित्व, उनकी प्रजाति, उनकी भावी पीढ़ी सुरक्षित है. सबल को चिढ़ाते हुए शुरू की निर्बल पंछियों ने अपने अस्तित्व रक्षा-सुरक्षा की संघर्ष यात्रा, नये प्रस्थान बिंदु से.

यह जिजीविषा यात्रा प्रकटतः कबूतर प्रजाति की है, लेकिन यह हम मनुष्यों की भी हो सकती है. पंछियों की इस यात्रा में मुझे अपनी प्रजाति की यात्रा की परछाइयां दिखाई दीं. कंदराओं से उठ कर चांद पर आशियाना बनाने की महत्वाकांक्षा-यात्रा भी तो इसके ही सदृश्य है. सदृश्य इसलिए कि मानव जाति की विकास यात्रा की

गाथा इसी प्रकार की रही है; हज़ारों साल की इस यात्रा ने कितने ही झंझावतों का सामना किया है; जलप्लावन-दावानल-भूधसान-ग्लेशियर परिवर्तन-ज्वालामुखी विस्फोट ने यात्रा-मार्ग रोका; मानव बसाहटें उजड़ीं; सभ्यताओं का उत्थान-पतन हुआ. पर अपनी संघर्ष-सृजन-विकास यात्रा का मानव ने कभी पटाक्षेप नहीं होने दिया. इस यात्रा में विफलता-सफलता-उपलब्धि के नये-नये आयाम जुड़ते गये, पुराने विलुप्त भी होते गये. मनुष्य और मनुष्यता से वसुंधरा सुसज्जित रहे, यह ध्रुव लक्ष्य यात्रा का मार्ग संचालक अवश्य रहा है.

प्रकृति मनुष्य की कालजयी व सार्विक सहयात्री भी रही है , पर अपनी अठखेलियों के साथ. प्रकृति के साथ ही मनुष्य का पहला संवाद होता है; वायु, अग्नि, जल, आकाश-पाताल, खनिज सम्पदा, वन सम्पदा आदि पर आधिपत्य की चिर महत्वाकांक्षा. इस महत्वाकांक्षा की पूर्ति की प्रक्रिया में मनुष्य को प्रकृति के आक्रोश का सामना भी करना पड़ता है. इसीलिए दोनों के बीच जय-पराजय का अंतहीन खेल भी चलता आ रहा है. प्रकृति पर मानव की निर्णायक विजय की अंतहीन तृष्णा उसे चैन से बैठने नहीं देती है. इसी बेचैनी में त्रासदी-दर-त्रासदी घटती रहती है. यहां तक कि मनुष्य आत्महंता बन जाता है. मनुष्य की उपचेतना में बैठी प्रकृति पर निर्णायक आधिपत्य की महत्वाकांक्षा 'मनुष्य पर मनुष्य की विजय' की चेतना में रूपांतरित होने लगती है. परिणामस्वरूप, साम्राज्यवाद-उपनिवेशवाद के अभियान चलने लगते हैं. इस प्रक्रिया में मनुष्य और उसके द्वारा निर्मित राज्य निर्मम से निर्ममतम बनने लगते हैं. राज्य द्वारा जनित संस्थाएं हिंसक बन जाती हैं. युद्ध होते हैं. विनाशलीला का तांडव होता है. इस परिदृश्य में मनुष्य और मनुष्यता का अस्तित्व व अस्मिता न्यून से न्यूनतर और न्यूनतम में सिकुड़ते चले जाते हैं, और इसके बरक्स मनुष्येतर शक्तियां-संस्थाएं सर्वेसर्वा होने लगती हैं. प्रकृति पर आधिपत्य का भ्रम होने लग जाता है इन शक्तियों-संस्थाओं को. इतिहास में दर्ज़ बेशुमार युद्धों से इसका साक्ष्य मिल सकता है. इसका ज्वलंत उदाहरण है मानवता की अपूर्णता का पूर्ण महाकाव्य– 'महाभारत', जिसके सभी पात्र पूर्णता-अपूर्णता के मध्य त्रिशंकु स्थिति में दिखाई देते हैं; ममता-निस्पृहता, घृणा-प्रेम, शांति-अहिंसा, करुणा-निर्ममता और मनुष्यता का, उत्थान-पतन की पराकाष्ठा का अनुपम महाकाव्य. मनुष्य व मनुष्यता का संरक्षण, सम्पोषण और संवर्धन कैसे हो, यह प्रश्न आदि काल से वर्तमान काल तक हमारे लिए 'अश्वत्थामा' बना हुआ है.

इसलिए भी कि दो-दो महायुद्ध (1915 व 1945), परमाणु बमों (हीरोशिमा व नागासाकी) की महाविभीषिका, 60 लाख

यहूदियों का नरसंहार (जर्मनी में हिटलर का फासीवाद), मुसोलिनी (इटली), लाखों मत विरोधियों को यातना शिविर में यातनाएं (स्टालिन द्वारा सोवियत संघ में अतिवादियों का दौर), पोल पोट, ईदी अमीन, सद्दाम हुसैन, ओसामा बिन लादेन जैसी घटनाओं व अधिनायकवादियों ने खूंख्वार आदिम प्रवृत्ति का ही परिचय दिया है. बावजूद इसके मनुष्य और मनुष्यता जीवित रहे हैं. इस यात्रा के मार्ग संचालन में बुद्ध, ईसा, सुकरात, कबीर, नानक, बुल्लेशाह, गांधी, मार्टिन लूथर किंग (जूनियर) मंडेला जैसे मनुष्य, मनुष्यता के सारथी बने रहे हैं. वास्तव में, हर युग में मनुष्य और मनुष्यता के लिए संकट पैदा होते रहे हैं. इस संकट के नानारूप हैं– साम्राज्यवादी अभियान, दास व्यापार, गुलाम प्रथा, नस्ल व रंग भेद, आतंकवाद, नव साम्राज्यवाद आदि घटनाएं.

मनुष्य और मनुष्यता के लिए संकट सिकुड़ा नहीं है, बल्कि इसका विस्तार ही हुआ है. मशीन द्वारा मनुष्य को उसके अस्तित्व से ही 'अपदस्थ' करने की कुचेष्टाएं चल रही हैं. ऑटोमेशन, रोबोट, आर्टिफीसियल इंटेलिजेन्स जैसी परिघटनाओं ने इसकी ज़मीन तैयार कर दी है. सुविधा, अतिसुविधा, चरमतम रफ़्तार, प्रौद्योगिकी विस्फोट आदि से मनुष्य ने भू-फासले पर विजय पायी है, वहीं मनुष्य-मनुष्य के बीच नैसर्गिक आत्मीयता उसकी पहुंच परिधि से बाहर होने लगी है. रोबोट, ऑनलाइन शॉपिंग, आभासी दर्शन, आभासी न्यूज़ रीडर-एंकर, आभासी प्रेम विवाह, ज़ूम कॉन्फ्रेंसिंग, ई गवर्नेंस आदि ने मनुष्य मनुष्य के बीच 'स्पर्श आनंद' को ही आघात पहुंचाया है. मनुष्य की मानवीय संवेदना व क्रियाएं 'यांत्रिक' बनने लगी हैं; डिजिटल उपकरणों में मानव इंद्रियों की अभिव्यक्तियां परिवर्तित होती जा रही हैं. इस प्रक्रिया में 'वीर भोग्या वसुंधरा' या 'सर्वाइवल ऑफ़ दी फ़िटेस्ट' या सोशल डारवनिज्म की धमाकेदार वापसी होने का संकट पैदा हो गया है. परम्परागत राज्य के अंग और उपंग निस्तेज पड़ने लगे हैं

कॉर्पोरेट स्टेट द्वारा इनके प्रतिस्थापन की आशंकाएं बढ़ती जा रही हैं. इस नयी व्यवस्था में मनुष्य के आधारभूत अस्तित्व और मनुष्यता की उपादेयता पर प्रश्नचिन्ह लग जाना इसकी स्वाभाविक नियति होगी. 'आदमी की मशीन' और 'मशीन का आदमी' की स्थिति ऐसे द्वंद्व-अंतर्विरोधों को जन्म देगी जिनका समाधान असम्भव नहीं तो 'दुष्कर' ज़रूर होगा. कल्पना करें, जब मनुष्य द्वारा निर्मित मशीन (रोबोट) अपने ही निर्माता को उसके अस्तित्व से बर्खास्त कर देगी तब तो उसके 'अवशेष' ही शेष रह जाएंगे ना! क्या मानव मशीन के भीतर 'चिप' बन कर रह जायेगा? क्या डाटा व सूचना हमारे नये धर्म बन जाएंगे? क्या अब

मानव-जाति की अगली उड़ान 'टेलीपोर्टेशन' का लक्ष्य प्राप्ति रहेगी? क्या रोबोट मशीन की नयी सभ्यता, नैतिकता और मूल्य रहेंगे? क्या तब भी मानवाधिकार, मौलिक अधिकार, लोकतंत्र, न्यायपालिका, विधायिका, कार्यपालिका आदि की ज़रूरत होगी? मनुष्य की यात्रा का लम्बा इतिहास है, उसके पूर्वज हैं, उसके पास विराट विरासत है, लेकिन इस धरोहर से मनुष्य की मशीन जन्मजात वंचित है. प्रयास तो यह भी चल रहे हैं कि ये रोबोट स्वतंत्र रूप से समस्त मानवीय क्रियाएं भी करने लगें. यदि रोबोट देर-सबेर यह शक्ति अर्जित कर लेता है तब इस धरा पर मनुष्य और मनुष्यता की कोई आवश्यकता रह जायेगी. इसे क्या 'नव उत्तरआधुनिकता' से परिभाषित किया जायेगा? जब मनुष्य और उसकी अभिव्यक्तियों की अनुगूंजें लुप्तं रहेंगी तब इंसान का 'रोबोट अवतार' का लीला मंच कैसा व कहां होगा और उसके दर्शक कौन होंगे? क्या मनुष्य को पुनः पाषाण युग, गुफा काल से अपनी यात्रा को आरम्भ करना होगा? यदि मनुष्य पर मनुष्य जनित यंत्र का निर्णायक रूप से आधिपत्य स्थापित हो जायेगा तब क्या हम मनुष्य जनता से प्रजा या नागरिक से दास में तब्दील हो जाएंगे? हमारे काव्य, महाकाव्यों का क्या होगा? क्या मशीन में मानव सभ्यता के 'नवरस' संचारित होने लगेंगे? क्या वह 'उत्तर कलियुग' कहलायेगा?

21वीं सदी के प्रथम चरण में इन सवालों से आज हमारा सामना है. शेष तीन चरण में इन आसन्न संकटों के साथ जीने के लिए मनुष्य अभिशप्त रहेगा. ऐसा मुझे प्रतीत होता है. इस दशा में मनुष्य और मनुष्यता कैसे सुरक्षित रहे, इस पर चिंतन-मनन की ज़रूरत है. फिर से कबूतरों के अस्तित्व-संघर्ष की ओर लौटते हैं. जब वे अपने नीड़ की लड़ाई लड़ने से पीछे नहीं हटे.पराजित कर दिया मनुष्य को. तब क्या सर्वगुण सम्पन्न, धरा के प्राणियों में सर्वशक्तिमान और त्रिलोक यात्री (पाताल, भूमि और अंतरिक्ष) मनुष्य को हार स्वीकार कर लेनी चाहिए अपनी ही निर्मिति से?

तमाम प्राकृतिक क्रोधों, मानवजनित युद्धों, नरसंहारों, अकालों, महामारियों के बावजूद मनुष्य ने अपनी मनुष्यता की यात्रा को विलोममुखी नहीं बनने दिया है, उसे निरंतर अग्रगामी रखा है, इसका साक्षी इतिहास है. तब क्या मानव को सभ्यता के इस पड़ाव पर आत्मसमर्पण करना होगा, अपनी ही रचित 'यंत्र माया' के सम्मुख?

इस प्रश्न का सिर्फ एक उत्तर हो सकता है– नहीं. मनुष्य मशीन नहीं है, पत्थर भी नहीं, और पशु भी नहीं. उसकी बुद्धिमत्ता और संवेदनशीलता उसे बजायेगी– और मनुष्य को इन दोनों की रक्षा करनी है. तभी मनुष्यता बचेगी. ❑

आवरण-कथा

बड़े भाग मानुष तन पावा

● विजय किशोर मानव

बड़े भाग मानुस तन पावा
सुर दुर्लभ सद्ग्रंथन गावा

बाबा गोस्वामी तुलसी दास की चौपाई की यह अर्द्धाली, मनुष्य को इस सृष्टि के शीर्ष पर रखकर दुनिया को देखती है. वे दुनिया में मनुष्य के सबसे भाग्यशाली होने की यह स्थापना उस काल में करते हैं जब देश में यवनों का शासन स्थापित था. शताब्दियों से आक्रांता हमारे देश को ही नहीं, धरती भर को मथते आ रहे थे. उनका अपना जीवन अभाग्यों और दुखों-संकटों से भरा था. और, जिन मर्यादा पुरुषोत्तम की जीवनगाथा उन्होंने लिखी और जगह-जगह तुलसी चौरे बनाकर वर्षों गाई-सुनाई थी, उनका जीवन भी कहां अभाग्य और दुखों से मुक्त था. तब फिर उनके इस कथन में कोई भेद है जो दुखों और अभाग्य से परे जाकर मनुष्य की श्रेष्ठता को रेखांकित करने के लिए संकेत करता है.

अमृता प्रीतम एक सम्भाषण में कहती हैं– एक जो बात चली आती है कि आदम और हव्वा वहिश्त से निकाले गये, इसलिए कि उन्होंने वर्जित फल खाया था. वह वर्जित फल क्या था? कोई सेब का नाम लेता है, कोई गेहूं के दाने का, पर जिन्होंने गम्भीरता से सोचा है, वे समझते हैं कि यह इल्म का फल था– फ्रूट ऑफ नॉलेज.

ज़ाहिर है कि उसका ताल्लुक़ उन चीज़ों से होगा जो ज्ञान का स्रोत हो सकती हों. कोई किताब हो सकती है या चिंतन और उसे बांटने की चेष्टा. ज़ाहिर है कि उस समय किताब तो रही नहीं होगी, लिखने की शुरूआत ही नहीं हुई थी. यह जो सोचना है और इसे बांटने की चेष्टा, यह मनुष्य को विशिष्ट बनाती है. मुझे लगता है कि मनुष्य ऐसी ही विशिष्टताओं और चेष्टाओं के साथ बाकी दुनिया से अलग होता चलता है. मनुष्य की शक्ति उसके चिंतन में है, और उसके प्रसार से चिंतन का परिपाक होता है. वाणी नहीं होगी तब, और अक्षर एवं शब्द नहीं होंगे तब भी, चिंतन होता रहा होगा और लोगों तक प्रसारित होता होगा. बीते दौर के आकलन और आने वाले समय पर सोचता होगा मनुष्य. यही चेष्टा उसके भाग्यवान माने जाने का आधार रही होगी.

एक अन्य बात जो मैंने समाजशास्त्रीय संदर्भों से उठाई है, यहां उल्लेखनीय है कि मनुष्य की इस विशिष्टता को आकार देने में जिन अन्य बातों की अहम् भूमिका रही है वे हैं– अक्षर, भाषा उन्हें दर्ज़ करना यानी

अंकित करना, उकेरना और छापना. अक्षर उकेरने, काग़ज़ और छपाई भले ही बहुत बाद में सम्भव हुए लेकिन इसके प्रभाव अत्यंत महत्त्वपूर्ण रहे. पहला– अक्षर जगत का आश्चर्यजनक विस्तार हुआ, हालांकि अधिकांश दुनिया के साक्षर न होने के कारण इसकी लोक में व्याप्ति नहीं हो सकी. दूसरा– लेखन पर धर्मसत्ता और राजसत्ता की पकड़ कमज़ोर हुई, यद्यपि उन्होंने लेखन और प्रकाशन पर अपना अंकुश बनाये रखने का पूरा प्रयत्न किया. तीसरा– स्थापित मान्यताओं और 'सत्यों' पर प्रश्नचिह्न लगना आरम्भ हुआ, असहमति और विरोध का स्वर मुखर हुआ. और चौथा– सृजन-प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिला.

मनुष्य पूरी सृष्टि से अलग तो होता है. सिद्धियों की चेष्टा तो उसके स्वभाव में शुरू से ही थी. योग वाशिष्ठ में एक प्रसंग में आता है कि राजा राजकाज के एकरस जीवन से ऊबकर कुछ अलग, कुछ विशिष्ट करना चाहता है. वह सब कुछ छोड़कर तप करता है और सिद्धि प्राप्त करता है. कहने का आशय यह है कि सत्ता का शिखर भी मनुष्य की मंज़िल नहीं है. जो कुछ हो रहा है, दुनिया जैसे चल रही है उसे वैसी ही नहीं चाहिए. बाकी की पूरी सृष्टि वैसे ही चला करती है. पशु, पक्षी, वनस्पतियां, कीट-पतंग, स्थावर, जंगम सब उसी चक्र में घूमते गतिमान हैं. इसका एक दूसरा छोर आध्यात्मिक है. कई बार उसे कुछ नहीं चाहिए. कई बार वह बुल्लेशाह है जो द्रष्टा है और निष्काम जीता है. ये सब मनुष्य के प्रोटोटाइप हैं. उसके ये शेड्स भी उसे विशिष्ट बनाते हैं.

ऋग्वेद की एक ऋचा की डॉ राधाकृष्णन् द्वारा की गयी टीका का आशय कुछ इस प्रकार है– मनुष्य के भीतर दो भाव हैं– उसका जीव भाव और विश्व भाव. जीव भाव अपनी उपस्थिति को जकड़कर जीवित है, और दूसरा आदर्श को लेकर जीवित है. यह आदर्श अन्न और वस्त्र की ओर नहीं, आंतरिक आह्वान की ओर है जिसकी दिशा व्यक्तिगत सीमा को लांघकर विश्वमानव की ओर जाती है. मनुष्य अपनी उन्नति के साथ-साथ व्यक्तिसीमा को पार कर, वृहत् मनुष्य हो उठता है. यही मनुष्य दुनिया के तमाम देशों, समाजों, वर्गों, जातियों और सम्प्रदायों में बिखरा होने के बावज़ूद, अंतर में केवल एक है, यानी मानव है. मनुष्य जो विश्व का द्रष्टा और भोक्ता है वह मुख्यधारा में रहकर भी अपने तक ही सीमित कैसे हो सकता है?

आज का दौर, और बड़े भाग्य से मनुष्य के रूप में पैदा होने की उक्ति, दोनों में संगति नहीं बैठती. कौन-सा मनुष्य बड़भागी है और कौन-सा हतभागी? हतभागी तो बिलबिलाती हुई बड़ी आबादी, समाप्त होती प्रजातियां, भोग्या वसुंधरा, शांत समुद्र, खुला आसमान और चर-अचर सब हैं. दूसरी तरफ हैं

दुनिया के बड़भागी और यहां केंद्र में है– धन और सत्ता. और उसी बड़भागी को देखकर संदेह होता है कि क्या इसी मनुष्य को आदर्श रूप में देखने की हमारी शास्त्रीय संकल्पना थी. करुणा और सहानुभूति की दुनिया उजाड़ हुई पड़ी है. करोड़ों भूखे-नंगे लोग, कोटरों के नरक में दुबके रहें या भूखे-प्यासे, अधमरे, सड़कों पर रेंगते कहीं जा रहे हों. इन्हें देखकर न सत्ताओं को कोई फर्क पड़ता है और न समाज के मुट्ठी भर उत्तम पुरुषों को. हम कौन हैं, जिन्हें किसी मनुष्य, जीव-जंतु, जंगल वनस्पति, बस्ती-शहर-धरती, तालाब-नदी-समुद्र और आकाश से अंतरिक्ष की तरफ देखते हुए लोभ का सैलाब उमड़ने लगता है. लूटने का यह कैसा भाव है कि देने का कोई जज़्बा हमारे भीतर रहने ही नहीं दे रहा है. सारा चिंतन और सारी उदारता, सहअस्तित्व का मंत्र और सहजीवन का पाठ कहीं गहरे दफ्न हैं. गिद्धों के आंसू भी इसे कारुणिक दृश्यों के लिए द्रवित न करें तो ऐसे मनुष्यों के जन्म को दुर्भाग्य का प्रतीक मानना ही उचित है.

मैंने कहीं पढ़ा था कि कई बार किसी इंसान की रोशनी बुझ जाती है, लेकिन वह किसी दूसरे इंसान की लौ से दोबारा जल जाती है. हममें दूसरे लोगों को रौशन करने का यह जज़्बा होना चाहिए. और बुझकर थक-हारकर बैठ गये लोगों को उन लोगों का शुक्रगुज़ार होना चाहिए जो इस रोशनी को दोबारा जलाते हैं. यही संवेदना का सम्बंध है, सहानुभूति और करुणा का सम्बंध है. यह सिर्फ मनुष्यों के बीच ही नहीं पूरी सृष्टि के लिए हम सभी में व्यापना चाहिए. जो लोग अक्षम हैं, शारीरिक, आर्थिक या सामाजिक रूप से विकल हैं, वे हमारा बोझ नहीं ज़िम्मेदारी हैं. यह आपको अपने माता-पिता, भाई-बहन और सगों से लेकर संसार भर के लोगों और जीवों-निर्जीवों सब तक फैलाना पड़ेगा. यही सारी मानवता की मांग है. यही मनुष्य को श्रेष्ठ मानने के पीछे की संकल्पना है. कुछ भी अच्छा करते जाना और भूलते जाना. वर्ड्सवर्थ कहते हैं– अच्छे व्यक्ति के जीवन का सर्वश्रेष्ठ हिस्सा दयालुता और प्रेम के छोटे-छोटे, गुमनाम, भुला दिये गये काम होते हैं.

लेकिन आज का जीवन देखकर आहत होना पड़ता है. हम प्रशस्ति के लिए ही सब कुछ करने लगे हैं. खाने का एक पैकेट देते हुए दसों के फोटो खिंचवाते हैं. भूख और लाचारी की इतनी अवमानना कि पाने वाले की भूख ही मिट जाए. अभी हाल में देश भर से हुए प्रवासियों के व्यापक पलायन के दौरान सरकार और व्यवस्था की संवेदनहीनता, नृशंसता के स्तर तक चली गयी. बस कुछ सीमित साधन वाले ही भामाशाह बनकर सामने आये. हमें यही समझना है कि प्रेम, देने वाले और पाने वाले, दोनों का इलाज करता है यानी बेहतर बनाता है. सामाजिक और जातीय घृणा ने सदियों में भी किसी को नहीं जोड़ा.

असल में मनुष्य श्रेष्ठतम है यह सच से ज़्यादा एक दार्शनिक उक्ति है. एक ऐसी स्थापना है जो आदमी को बेहतर बनने के लिए प्रेरित करती है. हम, इस जन्म और अगले जन्म में भी श्रेष्ठ माने जाने के लिए, सत्कर्म करने वाली परम्परा से जुड़े हैं. हम किसी ऐसे दौर को नहीं जानते जिसमें अश्रेष्ठ लोग नदारद हों और सिर्फ श्रेष्ठ ही रहे हों. धरती का कोई भी कोना न कल ऐसा था और न आज है. हमारे यहां देवी-देवताओं में भी वे सब मौज़ूद हैं. निऋति, अनीति और भ्रष्टाचार की देवी है. वे अनुपस्थित नहीं हैं लेकिन वे पूजाओं से बहिष्कृत हैं. हमारी परम्परा उन्हें अमान्य करती है. राम के, कृष्ण के, बुद्ध और महावीर, सबके दौर में ऐसी त्याज्य शक्तियां रही हैं लेकिन वे मुख्यधारा में नहीं आने पायीं. आज भी यही अभीष्ट है. इन्हें दूर रखना ही होगा. सत्ताएं इन्हें दूर नहीं करतीं. सारे धत्कर्म उन्हीं के अहाते में, उन्हीं की छाया में होते हैं. वे कैसे रोकेंगे, अश्रेष्ठ भीड़ के निर्माण को? उन्होंने पहले भी कभी नहीं रोका. यह काम चेतना के ध्वजवाहकों को ही करना होगा.

इसके लिए हमें समझना होगा कि हमारी चेतना के मूलाधार बिंदु कौन से हैं. इसके संवाहक कौन हैं. सप्तर्षियों में हमारी चेतना के सात छोर निहित हैं. विवेक, जागृति, वाणी, क्रिया, विचार, इच्छा और संकल्प. हमें इनकी ओर देखना होगा. ये सब मिलकर चेतना की ऊर्जा बनते हैं. एक और बात का उल्लेख यहां ज़रूरी लग रहा है. जब राम लंका पर विजय पाकर, रावण को हराकर अयोध्या लौटे तो शासन की स्थापना का प्रश्न उनके सामने था. यह रावण को हराने के प्रश्न से कहीं जटिल और गम्भीर था. इसके परिणाम दूरगामी होने वाले थे. वह रामराज्य कायम करना चाहते थे. परामर्श के लिए वसिष्ठ मुनि आये और उन्होंने कहा यदि तुम ऐसा राज्य स्थापित करना चाहते हो तो तुम्हें विष्णु बनना होगा. उनके प्रतीक धारण करने होंगे. चतुर्भुज विष्णु के हाथों में पद्म, गदा, चक्र और शंख ये चार चीज़ें हैं. ये सिर्फ प्रतीक हैं. व्यावहारिकता में इनके बहुत खास मायने हैं जो उत्कृष्ट शासन व्यवस्था के आधार हैं. ये क्रमशः शक्ति-व्यक्तित्व-आचरण, बल-आत्मबल, कला-संस्कृति-सभ्यता और चिंतन तथा अंतरात्मा की आवाज़ के प्रतीक हैं. ये किसी भी शासक के लिए अनिवार्य आदर्श हैं.

हमें ऐसे ही शासक सुनिश्चित करने और ख़ुद में ऐसी पात्रता विकसित करनी चाहिए जो वैदिक काल से चले आ रहे मनुष्य के पारिभाषिक सच की कसौटी पर खरा उतर सके. सत्ता और लोक के बीच सारी दुनिया में ऐसी ही व्यवस्था की अपेक्षा होनी चाहिए. तभी हम वैसे मनुष्य की श्रेणी में व्यापक समाज के होने की कल्पना कर सकते हैं जिसके बारे में गोस्वामी जी ने कहा है– बड़े भाग मानुष तन पावा. ❑

कुआं, पथिक और गुड़ का ढेला

● विकास मिश्र

विज्ञान मिश्रित इतिहास पढ़ते हुए एक मोटी-मोटी जानकारी मिल जाती है कि मानव विकास के रास्ते पर कैसे बढ़ा और विज्ञान के इस युग तक की यात्रा कैसी रही. यह भी जानकारी मिल जाती है कि धरती का सबसे बलशाली जीव बनने में मानव कैसे कामयाब हुआ लेकिन एक सवाल मेरे मन में हमेशा बना रहता है कि मानव मन के भीतर मानवीयता कब पैदा हुई? सवाल वाजिब इसलिए है क्योंकि इतिहास के किसी शुरूआती काल में मनुष्य भी जानवर जैसा ही था. हिंसक पशुओं से घिरा हुआ... अपनी रक्षा और अपने भोजन के लिए हिंसा उसकी ज़िंदगी का हिस्सा होगा ही! ऐसे किसी दौर में ऐसी कौन-सी घटना हुई होगी जिसने मानवीयता को पनपने का रास्ता दिया होगा.

जवाब बहुत स्पष्ट नहीं है लेकिन विश्लेषण से कुछ अंदाज़ा ज़रूर लगाया जा सकता है. मानव विकास के पीछे खुद मानव की कोशिशें तो थी हीं, प्रकृति भी सहायता कर रही होगी क्योंकि शरीर, मन और मस्तिष्क का विकास तो प्रकृति के ही बूते में है. मुझे लगता है कि मानवीयता के अंकुर सबसे पहले मां के भीतर उपजे होंगे. आप कह सकते हैं कि मां के भीतर तो ममता ने जन्म लिया होगा! जी हां, यही ममता वक्त के साथ मानवीयता में तब्दील हुई होगी क्योंकि मानवीयता का आधार भी

तो ममता ही है न. जब किसी के प्रति आपके भीतर सात्विकता जन्म लेती है. उसके संरक्षण का खयाल आता है, उसकी मदद का खयाल आता है तो हम उस भाव को मानवीयता कहते हैं. इस भाव में ममता ही तो प्रमुख है! तो यह माना जा सकता है कि ममत्व ही मानवीयता का सूत्र बिंदु है. ममत्व चूंकि नैसर्गिक है इसलिए मानवीयता को भी हमें नैसर्गिक मानना ही चाहिए. इसमें स्नेह भी है, प्रेम भी है और स्पर्श भी है. यदि विज्ञान की दृष्टि से देखें तो आप जब किसी को तकलीफ़ की स्थिति में देखते हैं तो आपके भीतर ऐसे रसायन पैदा होते हैं जो उसकी मदद के लिए आपको प्रेरित करते हैं. अर्थात मानवीयता को प्रकृति ने हमारे भीतर संयुक्त किया जिसका विकास वक्त के साथ होता चला गया!

तो एक सवाल यह पैदा होता है कि यदि मानवीयता प्रकृति प्रदत्त है तो 'सभ्य मानव' मौजूदा दौर में जो कुछ भी हम देख रहे हैं या महसूस कर रहे हैं वह क्या है? क्या आज का मानव उस मानवीयता से दूर होता जा रहा है जिसका विकास उसने सांस्कृतिक विकासशीलता के साथ कदमताल करके किया है? जवाब हां भी है और ना भी! हां इसलिए कि कई उदाहरण हमें डराने के लिए बार-बार सामने आते रहते हैं. हम महामारी के इसी दौर की बात करें और उन मनुष्यों की बात करें जो हमारे शहरों को आकार देते हैं तो सवाल उठता है कि उनके साथ क्या सम्पूर्ण समाज ने मानवीयता दिखायी? कुछ लोग ज़रूर ऐसे थे, कुछ संस्थाएं ऐसी थीं जिन्होंने अपने बलबूते जो सम्भव था किया, लेकिन ज़्यादातर लोगों ने मजदूरों के रक्तरंजित पैरों की तस्वीर देखकर दुख तो जताया लेकिन क्या वे मदद के लिए घर से निकले? यदि उन प्रवासियों की मदद के लिए सारा समाज उठ खड़ा हुआ होता तो क्या स्थिति उतनी दर्दनाक बनती जितनी बन गयी? जब मैं यह खबर देखता हूं कि एक अस्पताल का बिल नहीं चुकाने के कारण एक बूढ़े व्यक्ति को उपचार के बाद अस्पताल में ही बेड से बांध दिया गया ताकि वह बिना बिल चुकाये अपने घर न जा सके तो मन कहता है कि मानवीयता में कमी तो आ रही है.

जब यह देखता हूं कि एक व्यक्ति को अपनी पत्नी की लाश घर ले जाने के लिए एंबुलेंस नहीं मिलता है तो व्यवस्था की मानवीयता के खत्म हो

यदि विज्ञान की दृष्टि से देखें तो आप जब किसी को तकलीफ़ की स्थिति में देखते हैं तो आपके भीतर ऐसे रसायन पैदा होते हैं जो उसकी मदद के लिए आपको प्रेरित करते हैं.

जाने का दुखद एहसास होता है. ऐसे और बहुत से उदाहरण हर रोज हमें मिलते रहते हैं.

जब मैं अपने बचपन की यादें टटोलता हूं तो लगता है कि पहले तो ऐसा नहीं था. कोई चालीस पहले मैं अपने गांव में रहा करता था. उन दिनों हमारे गांव में बसें नहीं आया जाया करती थीं. सबके पास साइकिलें भी नहीं थीं. लोग ज़्यादातर पैदल ही सफर करते थे. मेरा घर कच्ची सड़क के किनारे था और घर के ठीक सामने एक कुंआ था जहां सड़क से गुजरते हुए राहगीर पानी पीने के लिए रुकते थे. मां जब भी किसी पथिक को रुकते हुए देखती तो हम बच्चों को गुड़ का एक ढेला (टुकड़ा) लेकर भेजती कि पथिक को दे दो. इतनी गर्मी में बिना कुछ खाये पानी पीना ठीक नहीं होता है. मां गुड़ के छोटे-छोटे ढेले बनाकर रखती थी. और घरों में भी यही व्यवस्था होती थी. कई बार पथिक से ज़्यादा गुड़ के ढेलों की संख्या हो जाती थी. पथिक से कई बार खाने के लिए भी पूछ लिया जाता था. कई बार शर्बत की व्यवस्था भी होती थी लेकिन अब हमारे गांव में ऐसा कुछ नहीं होता. कुएं की जगह हैंडपम्प ने ले ली है. पथिक आज भी रुकते हैं. पानी आज भी पीते हैं लेकिन गुड़ का वो ढ़ेला गायब हो चुका है. क्या यह मानवीयता में कमी का उदाहरण नहीं है? हमारे लिए यह चिंता का विषय ज़रूर होना चाहिए.

....लेकिन अंधियारा अभी इतना घना भी नहीं हुआ है. उम्मीद की किरणें भी बीच-बीच में टिमटिमाती रहती हैं. यदि एक मरते हुए मजदूर को उसके मजदूर साथी छोड़ जाते हैं तो दूसरी ओर अपने बीमार हिंदू दोस्त के लिए एक मुस्लिम युवक अपना सफर रोक देता है. हालांकि वह उसे बचा नहीं पाता लेकिन अंतिम समय में दोस्त का सिर उसकी गोद में था. एक मुस्लिम युवक ने अपने हिंदू पड़ोसी का अंतिम संस्कार पूरे हिंदू रीति रिवाज से किया क्योंकि उनका बेटा लॉकडाउन के कारण पिता को मुखाग्नि देने नहीं पहुंच पाया. बहुत कमज़ोर वर्ग के लोगों ने संकट में फंसे मजदूरों की मदद के लिए अपनी सारी जमा पूंजी खर्च कर दी. ...तो इसका मतलब है कि मानवीयता पूरी तरह खत्म नहीं हुई है. हां, हमें अब सतर्क होने की ज़रूरत है कि हमारी ज़िंदगी में मानवीयता बची रहे. इसकी शुरूआत हम खुद से कर सकते हैं. अपनी क्षमता के अनुसार समाज के ज़रूरतमंदों तक पहुंचें. ज़रूरी नहीं कि आपकी क्षमता बहुत बड़ी ही हो! जब आप आगे आयेंगे तो कारवां बनता जाएगा. सबसे बड़ी बात कि आपका बच्चा आपका मानवीय चेहरा देखेगा तो वह भी इसी रास्ते पर बढ़ेगा.

एक छोटा-सा दीया भी कुछ अंधेरा तो छांट ही देता है...! ❑

आवरण-कथा

तभी मनुष्यता बचेगी

● सरोज त्रिपाठी

आपनी संवेदनशीलता के कारण ही हम मनुष्य कहलाते हैं. मनुष्यता के कारण ही यह संसार जीने योग्य है. परंतु हिंसा आतंक, स्वार्थ, शोषण और क्रूरता आदि के दंश मानवता को मूर्छित कर रहे हैं. मूर्छा को तोड़ने के लिए सहयोग तथा संवेदना की पृष्ठभूमि पर स्वस्थ समाज संरचना की परिकल्पना को आकार देना होगा. हमें स्मरण रखना होगा कि दूसरों के प्रति संवेदनशीलता मानवता की आधारशिला है. पर वैश्वीकरण ने हमारे मानवी अंत:करण पर हमला किया है. इसकी वजह से हमारी संवेदनशीलता तथा विवेकशीलता लहूलुहान हो गयी है.

आज जब हम अपने आसपास की स्थिति को देखते हैं तो पाते हैं कि हम कितने असभ्य और असंवेदनशील हो चुके हैं. हम सिर्फ अपने बारे में सोचते हैं और हमें अपनी चिंताएं ही हर वक्त सताती हैं. आधुनिकता के चक्रव्यूह में फंसकर हम मानवीय रिश्तों, मर्यादाओं और नैतिक दायित्वों को लगातार भूलते जा रहे हैं. समाज में निर्दयता और हैवानियत बढ़ती ही जा रही है. ऐसे में समाज को संवेदनशील बनाने की ज़रूरत है. इस ज़रूरत को कैसे पूरा किया जाए इस मामले पर समाजशास्त्रियों दार्शनिकों तथा बुद्धिजीवियों को गहन चिंतन करना होगा. अक्सर हम दुनिया में नैतिक और सभ्य होने का ढिंढोरा पीटते हैं जबकि हमारे समाज की स्थितियां इसके विपरीत हैं,

भयानक हैं. हम भले ही तकनीकी तौर पर उन्नति करके विकास कर रहे हैं लेकिन अपने मूल्यों दायित्वों और संस्कारों से मुंह मोड़कर अवनति के फंदे को गले लगा रहे हैं. सबसे पहले हमें इंसान बनने की बात करनी होगी. इंसानियत की बुनियाद को मज़बूत करना होगा.

मानवता का आधार है दया, करुणा और अनुकंपा. इसके लिए मनुष्य में मानवीयता का गुण होना आवश्यक है. हमारे भीतर ऐसी संवेदनशीलता होनी चाहिए कि अगर कोई व्यक्ति कष्ट में हो तो उसकी पीड़ा का एहसास हमें भी हो. फिलहाल हमें एहसास तो होता है पर सिर्फ वहां जहां हमारा अनुराग होता है. किसी का अपना बच्चा बीमार हो तो उसे पीड़ा होगी लेकिन वही पीड़ा पड़ोसी के बच्चे के बीमार होने पर नहीं होगी. आज हमने अपनी नैतिकता और संवेदनशीलता को सिर्फ अपने तक सीमित कर रखा है. आज समाज में जितनी भी अन्याय की घटनाएं होती हैं उन सब का मूल कारण संवेदनशीलता का अभाव है. जिसकी वजह से मनुष्य दूसरों के दुख-दर्द और पीड़ा का अनुभव नहीं कर पाता. इसके लिए नितांत आवश्यक है कि बचपन से नैतिकता मानवीयता और संवेदनशीलता के संस्कार प्रस्फुटित किये जाएं.

मनुष्य की स्वार्थ चेतना अनेक बुराइयों का आमंत्रण है क्योंकि व्यक्ति सिर्फ व्यक्ति नहीं है वह परिवार, समाज, देश और दुनिया की निजी दायित्वों से भी जुड़ा है. अपने लिए जीने का अर्थ है अपने सुख की तलाश और इसी सुख की तलाश ने अनेक समस्याएं पैदा की हैं. सामाजिक जीवन का एक आधारभूत सूत्र है सापेक्षता. निरपेक्ष व्यक्तियों का समूह भीड़ हो सकती है, समाज नहीं. जहां समाज होगा वहां सापेक्षता होगी. जहां सापेक्षता होगी वहां सहानुभूति संवेदनशीलता और आत्मीयता होगी. किसी भी समाज की शक्ति एवं सफलता का आधार है सापेक्ष सहयोग तथा अपनी प्रतिबद्धता. स्वस्थ और उन्नत समाज वह है जिसमें सामाजिक चेतना तथा संवेदनाओं की अनुभूति प्रखर हो और उसकी क्रियान्विति के प्रति जागरूकता बढ़ती जाती हो.

यह सार्वभौमिक सत्य है कि पृथ्वी है तो मानव है और मानव है तभी मनुष्यता की गुंजाइश है. पर सम्भव है कि आगामी कुछ वर्षों में हम सितारों के बीच मानव उपनिवेशों की स्थापना करने में सफल हो जाएं. परंतु अभी तो हमारे पास रहने के लिए केवल पृथ्वी ही है. और आज मनुष्य के कारनामों से इस ग्रह के अस्तित्व को खतरा उत्पन्न हो गया है. आज मनुष्य के पास इस ग्रह को नष्ट करने वाले घातक हथियारों का जखीरा मौजूद है. हम भयावह पर्यावरण की चुनौतियों का भी सामना कर रहे हैं. जलवायु परिवर्तन, खाद्य उत्पादन संकट, जनसंख्या वृद्धि, अन्य प्रजातियों

की विलुप्त महामारी आदि की समस्याएं गम्भीर रूप धारण कर चुकी हैं.

इतिहास में पहली बार मानव प्रजाति का भविष्य अनिश्चितता के दौर से गुजर रहा है. मानव समाज ने धरती को अब तक बहुत घायल कर दिया है. यही स्थिति बनी रही तो इस सृष्टि से मानव प्रजाति और उसकी संस्कृति निश्चित ही विलुप्त हो जाएगी. अब प्रकृति में संतुलन स्थापित करने के लिए एकमात्र विकल्प यह है कि हमने इस धरती को जो घाव दिये हैं उनकी भरपाई कर पृथ्वी की आरोग्यता को बढ़ाया जाए तथा सृष्टि के इस ग्रह को चिरायु बनाये रखने के लिए हर सम्भव प्रयास किये जाएं.

जीवाश्म ईंधन पर आधारित हावी तकनीक और आर्थिक मॉडल प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करते जा रहे हैं. यह पृथ्वी के लिए घातक साबित हो रहा है. धरती पर हमारे जीवन का प्रमुख आधार मिट्टी और मानवता दोनों संकट की स्थिति से गुजर रहे हैं. औद्योगिक खेती भी जलवायु पर बुरा असर डाल रही है. ग्रीन हाउस गैसों को बढ़ावा देने में विश्व भर में की जा रही औद्योगिक खेती का चालीस प्रतिशत से अधिक का योगदान है. ग्रीनहाउस गैस हमारी जलवायु का संतुलन बिगाड़ रहे हैं. औद्योगिक खेती से कभी भी भुखमरी की समस्या का समाधान नहीं हो सकता. पारिस्थितिकी पर आधारित छोटी कृषि जोत और स्थानीय खाद्य प्रणाली से भी सम्पूर्ण विश्व को पोषण के साथ जलवायु परिवर्तन हासिल हो सकता है.

प्रकृति ने हवा, पानी, मिट्टी, वातावरण, जैव विविधता और बीच का उपहार समस्त मानवता को दिया है. आज मिट्टी, हवा और जल का लगातार निजीकरण किया जा रहा है. हमें किसी भी कीमत पर इस निजीकरण की प्रक्रिया को रोकना होगा. बीज स्वतंत्रता और जैव विविधता भोजन की स्वतंत्रता तथा जलवायु स्थिरता की नींव है. हमें बीज की स्वतंत्रता के लिए प्रतिबद्ध होना पड़ेगा. यह धरती आदिकाल से हमारी पीढ़ियों को अपनी जैव विविधता के माध्यम से पाल-पोस रही है. समस्त मानव समुदायों को मिलकर ईमानदारी पूर्वक संगठनात्मक रूप में जैव विविधता को बचाकर सभी के लिए बीजों की उपलब्धता सुनिश्चित करनी होगी. बीज प्रकृति का अनमोल उपहार है. यदि कोई भी कानून अथवा प्रौद्योगिकी हमारी बीज स्वतंत्रता को कम करने का प्रयास करता है तो हमें इसका संगठित रूप से विरोध करना पड़ेगा. अपने बीजों की रक्षा करने के साथ ही हम सबको जीएमओ तथा पेटेंट के विरोध में एकजुट होकर संघर्ष करना पड़ेगा.

व्यापक विरोध के बावजूद वैश्विक आर्थिक असमानता में वृद्धि जारी है. गरीब और अमीर के बीच असमानता की खाई

लगातार बढ़ती जा रही है. हमारे समाज में जितनी आर्थिक असमानता होगी हिंसा की दर उसी अनुपात में बढ़ती जाएगी. मुक्त व्यापार और कारपोरेट जगत की बेलगाम स्वतंत्रता, पृथ्वी और मानव समाज के लिए खतरे की घंटी है. प्रकृति हमें जीवन जीने के लिए स्वतंत्र और अवैध रूप से जलवायु और अन्न प्रदान करती है. इन तत्वों के अतिरिक्त सम्मानजनक जीवन जीने के लिए स्वतंत्रता की आवश्यकता होती है, लेकिन आज कारपोरेट जगत ने मुफ्त व्यापार के माध्यम से हमारी स्वतंत्रता को छीन लिया है. कारपोरेट जगत ने अपने लाभ के लिए जैव विविधता को लगातार अपना बंधक बना रखा है. वह प्रकृति द्वारा प्रदत्त प्रत्येक तत्व का बलात व्यापार करने में लगा हुआ है. इसके चलते हमारी धरती कई संकटों का शिकार हो रही है. जन सामान्य की आर्थिक स्थिति भी बिगड़ती जा रही है. पूरी दुनिया के स्वतंत्रताकर्मियों को इस मुक्त व्यापार के विरोध में अपनी आवाज़ बुलंद करनी चाहिए.

धरती पर सभी मानव समान हैं. हमें वसुधैव कुटुंबकम यानी परस्पर सहभागिता और लोकतंत्र में आस्था रखनी चाहिए. पृथ्वी तथा उसके प्राणियों के कल्याण हेतु साझेदारी और विविधता में एकता के सिद्धांत को विश्व का आदर्श मानना पड़ेगा. मनुष्य होने के नाते हमें यह समझ होनी चाहिए कि मनुष्य सहित सम्पूर्ण जैव विविधता को धरती पर फलने फूलने का पूरा अधिकार है. न्याय, शांति, मानवता और मानवाधिकार की निरंतरता को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता. हम सभी मनुष्यों को मिलजुल कर अपने स्वार्थ और लालच को ईमानदारी और ज़िम्मेदारी में बदलना होगा. तभी मनुष्यता बची रह पायेगी. ❑

मनुष्य बनने का कर्त्तव्य

अमानुषीकरण पूरी तरह से मनुष्य बनने के कर्त्तव्य में आने वाला एक विकार है. यह अपनी छाप उन्हीं पर नहीं छोड़ता जिनकी मनुष्यता को हथिया लिया गया है, बल्कि उनको भी प्रभावित करता है जिन्होंने दूसरों की मनुष्यता को हथिया रखा है. वास्तव में यह अमानुषीकरण मनुष्य की नियति नहीं है, यह एक अन्यायपूर्ण व्यवस्था का परिणाम है. इस व्यवस्था को बदलना ही समस्या का इलाज है. लेकिन ज़रूरी यह है कि इलाज करते वक्त इस बात का ध्यान रखा जाये कि उत्पीड़ित दूसरों के उत्पीड़क न बन जाये, बल्कि उनका उद्देश्य दोनों को पुनः मनुष्य बनाना होना चाहिए. – **पाओलो फ्रेरे**

मनुष्यता की त्रासदी

● जवाहरलाल नेहरू

हममें से ज़्यादातर लोग अपने वर्तमान की जटिलताओं से जूझने में लगे हैं. अपनी रोज़मर्रा की ज़िंदगी में हम ढेरों परेशानियां सुलझाते हैं, पर यह पर्याप्त नहीं है. इस रोज़ाना ज़िंदगी से परे आदमी को किसी ऐसी चीज़ की तलाश भी रहती है जिससे वह बुनियादी तरक्की कर सके. दुनिया के सामने आने वाली परेशानियों को सुलझाने के लिए क्या किया जाना चाहिए, क्या किया जा सकता है, आदमी के लिए इसके बारे में विचार करना भी ज़रूरी होता है. मुझे ऐसा लगता है कि आधुनिक विश्व उससे पूरी तरह दूर होता जा रहा है जिसे हम मस्तिष्क का जीवन कह सकते हैं, जबकि हकीकत यह भी है कि आज की दुनिया पूरी तरह मस्तिष्क के जीवन से ही उपजी है. जो कुछ भी हम अपने आस-पास देखते हैं, वह आखिर हमारे मस्तिष्क का ही तो सृजन है. जो भी हमारे आस-पास है, या जो भी हम अनुभव कर पा रहे हैं, वह मानव-मस्तिष्क की ही तो देन है. हमारी यह सभ्यता, जिसपर हम गर्व करते हैं, मानव-मस्तिष्क की ही बनायी हुई है. फिर भी, हैरानी की बात है कि व्यक्ति को यह लगने लगा है कि आधुनिक विश्व में मनुष्य के मस्तिष्क की भूमिका लगातार कम होती जा रही है. विशिष्ट क्षेत्रों में तो यह भूमिका अब भी बरकरार है, पर जीवन में तो इस भूमिका की उपेक्षा ही हो रही है. यह मुझे लग रहा है. अगर यह सही है, तो हम जो कर रहे हैं, उसमें कुछ बहुत गलत हो रहा है. जिस सभ्यता का हमने निर्माण किया है, और कर रहे हैं, उसमें कोई बड़ी खाई है. हमारी इस निर्मिति में लगातार बदलाव आ रहा है. ये बदलाव इतनी तेज़ी से हो रहे हैं कि मनुष्य का मास्तिष्क उस तरह से काम नहीं कर पा रहा, जैसे उसे करना चाहिए. विश्व-इतिहास के अपेक्षाकृत कम गति वाले दौर में यह मस्तिष्क जैसे काम करता था, शायद इस दौर में वैसा नहीं हो पा रहा. यदि यह सही है तो निश्चित रूप से यह विश्व के प्रति अच्छा नज़रिया नहीं है. इससे हमारी सभ्यता का वह आधार कमज़ोर हो रहा है जिसके सहारे हमने इतनी प्रगति की है, और कर

रहे हैं.

हम बहुत-सी महत्वपूर्ण चीज़ों के बारे में बात करते हैं. भारत में मेरी चिंता उन बुनियादी ज़रूरतों के बारे में है, जो देश की जनता अनुभव कर रही है. रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि की चिंता है मुझे. ये जीवन की बुनियादी ज़रूरतें हैं, और जब तक ये पूरी नहीं हो जातीं, तबतक बुद्धि, आत्मा आदि की बात करना ज़्यादा मायने नहीं रखता. एक भूखे आदमी के सामने भगवान की बात करना बेमानी है, उसे रोटी की ज़रूरत है. इसलिए जीवन की बुनियादी ज़रूरतों के बारे में सोचना ज़रूरी है. फिर भी, यह सब करते हुए भी कोई आदर्श या लक्ष्य सामने होना ज़रूरी है. और यदि इस आदर्श या लक्ष्य का मानव-मस्तिष्क के विकास से रिश्ता कम होता जाता है, तो ज़रूर कोई गड़बड़ है. मैं नहीं जानता मेरी यह बात सही है या नहीं, और आप इससे सहमत हैं या असहमत. यदि यह सही है, तब भी ऐसा क्यों है?

मैं आधुनिक सभ्यता की उपलब्धियों, विज्ञान के विकास, तकनीकी प्रगति का बड़ा प्रशंसक हूं. उन पर गर्व करने के पर्याप्त कारण हैं मनुजता के पास, फिर भी, यदि यही उपलब्धियां भविष्य में उपलब्धियों की क्षमता को घटाती हैं– और यह तभी होगा जब मस्तिष्क या बुद्धि का क्षय होता है– तो निश्चित रूप से इस प्रक्रिया में कुछ गड़बड़ है. हम कहीं न कहीं गलत मुड़ गये हैं. मेरा मानना है कि अंतत: बुद्धि का वर्चस्व रहना ही चाहिए. अगर विश्व का मानसिक ह्रास होता है, या फिर नैतिक पतन होता है, तो इसका मतलब सभ्यता और संस्कृति के मूल में कुछ गड़बड़ होना है. सम्भव है वह सभ्यता एक लम्बे अर्से तक बनी रहे, पर वह कमज़ोर होती जायेगी और आखिरकार वह भरभरा कर गिर भी सकती है. जब मैं पिछले इतिहास के कालों को देखता हूं, जो हमारे वर्तमान युग से बहुत अलग हैं, तो पाता हूं कि उनमें कुछ महान उपलब्धियों वाले हैं. मानव-मस्तिष्क के विकास में उनका भारी योगदान रहा है. कुछ युग ऐसे भी हैं, जिनका यह योगदान बहुत कम या नहीं रहा है. हम वह भी देखते हैं कि एक ऊंचा स्तर पा लेने के बाद, जातियां अपनी उपलब्धियों की दृष्टि से कमज़ोर होती जा रही हैं. इसलिए, मुझे लगता है अपेक्षाकृत ऊंची संस्कृतियों में वह कमज़ोर होने वाली प्रक्रिया नहीं हो रही है, और हमारी वर्तमान सभ्यता के ढांचे में कोई भीतरी कमज़ोरी पनप रही है. तब मेरे मन में विचार आता है कि यह कौन-सा सर्वश्रेष्ठ परिवेश है जो सर्वश्रेष्ठ मनुष्यों का निर्माण करता है? इस संदर्भ में शिक्षा की बात आती है. निश्चित रूप से वह महत्त्वपूर्ण है, लेकिन हमारे स्कूलों-कॉलेजों की शिक्षा के साथ-साथ हमारा

परिवेश भी मनुष्य के विकास को प्रभावित करता है. वह कैसा परिवेश था जिसने अतीत में महान युगों को जन्म दिया? उस तरह का वातावरण आज है क्या? मानव जीवन के अनेक विभागों में शानदार विकास के बावजूद क्या हम उस वातावरण की ओर बढ़ रहे हैं या उससे दूर जा रहे हैं?

लगभग दो सौ साल पहले औद्योगिक क्रांति ने भारी परिवर्तन किये थे, जो ज़्यादातर बेहतरी के लिए ही थे. वह प्रक्रिया जारी है और लगातार तेज़ भी हो रही है. यह हमें कहां ले जा रही है? एक तरफ तो यह हमें शानदार विजयों की ओर ले गयी है और दूसरी ओर बड़ी-बड़ी लड़ाइयों और बड़े संघर्षों की तरफ जो मनुष्यता के एक बड़े हिस्से पर आच्छादित हैं. एक तरफ विकास है और दूसरी तरफ जो कुछ मनुष्यता ने अर्जित किया है, उसे नष्ट कर सकने वाली प्रक्रिया है. हम में से बहुत-से यह मानने लगते हैं कि ये दोनों बातें अवश्यंभावी हैं. यह मुझे बहुत अजीब लगता है– एक ओर तो हम निर्माण करना चाहते हैं, दूसरी ओर उस निर्माण के विध्वंस को भी हम स्वीकारते जाते हैं. कोई भी तार्किक व्यक्ति उसे बचाना ही चाहेगा जो उसने बनाया है. विध्वंस बाहरी भी हो सकता है, पर इससे कहीं अधिक खतरनाक वह भीतरी विध्वंस है जो व्यक्ति के सोच और भावना के स्तर पर होता है. क्या हम उन जड़ों के सम्पर्क में नहीं रहे जो मनुष्य जाति को ताकत देती हैं, व्यक्ति को ताकत देती हैं?

एक मशीनी सभ्यता विकसित हो रही है. इस सभ्यता ने विश्व को बहुत कुछ दिया है, पर कहीं ये मानव-मस्तिष्क को भी धीरे-धीरे मशीनी तो नहीं बनाती जा रही? अपनी मदद के लिए मशीन बनाने वाला मस्तिष्क धीरे-धीरे मशीन का गुलाम होता जाता है. और एक जाति के रूप में हम मशीनी-मस्तिष्क वाले बन जाते हैं. मेरा मानना है कि किसी व्यक्ति या समाज के विकास को नापने का एक पैमाना यह है कि उसकी सृजनात्मक कल्पना शक्ति कितनी है, उसमें साहस कितना है. यदि यह सृजनात्मक कल्पना-शक्ति कम है, या कम होती जा रही है तो यह उसके कमज़ोर होने का संकेत है. आज क्या हो रहा है? क्या हम उस सड़न या कमज़ोरी को रोकने का कोई प्रयास कर रहे हैं? यह बात राजनीतिक संघर्ष का रूप ले सकती है, आर्थिक लड़ाई में तब्दील हो सकती है. पर शायद बात कहीं ज़्यादा गहरी है. जब भी पूर्वी या पाश्चात्य दृष्टि से मनुष्य के स्वरूप पर कहीं चर्चा होती है, मेरी रुचि उसमें बढ़ जाती है. मैं विश्व को पूर्वी या पाश्चात्य खेमों में बांटने का पक्षधर नहीं हूं. यह सबसे आसान तरीका है स्वयं को बांटने का. फिर भी मेरा यह मानना है कि जातीय और राष्ट्रीय

दृष्टिकोणों, आदर्शों में अंतर हमेशा से रहे हैं और आगे भी रहेंगे.

पश्चिम के देशों ने एक तरह की सभ्यता विकसित की है. पिछले लगभग दो सौ सालों में यूनान या रोम या अन्य कहीं की परम्पराओं पर आधारित है यह सभ्यता. जो प्रचुर औद्योगिक विकास पश्चिम में हुआ है उसे वैज्ञानिक विकास कहा जा रहा है. अब अंतर पूर्व या पश्चिम के देशों के बीच नहीं, औद्योगीकृत और गैर औद्योगीकृत देशों के बीच है. मध्य युग में भारत और यूरोप में यह अंतर इतना बड़ा नहीं होता. यह अंतर वैसा ही होता जैसा पूर्व के देशों के बीच हो सकता है. इसलिए इस अंतर को पूर्व और पश्चिम के अंतर के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए. देशों को इस तरह बांटना भ्रामक है, क्योंकि यह हमें सही तरह से नहीं सोचने देता.

यह अंतर मुख्यत: औद्योगिकीकरण और मशीनीकरण के कारण ही पनपा और बड़ा हुआ है. वैसे इन दोनों चीज़ों ने मनुष्यता को दिया भी बहुत कुछ है. लेकिन, भले ही अतीत में ऐसा न हो, पर अब तो शायद यह मशीनीकरण मस्तिष्क के जीवन को जंग लगा रहा है और इस तरह स्व-विनाश की प्रक्रिया को बढ़ावा दे रहा है. मैं युद्ध की बात नहीं कर रहा, बाकी इतर चीज़ों के बारे में सोच रहा हूं. इसे हम कैसे रोक सकते हैं? इतिहास जातियों के उत्थान और पतन की कहानियां सुनाता है. एशिया में शानदार अतीत के तिरोहित होने के बाद हमने इस प्रक्रिया को यूरोप में देखा. कुछ ऐसी ही बात हम आज देख रहे हैं. हो सकता है हमारे जीवन में यह प्रक्रिया पूरी न हो. पहले, कम से कम यह दिलासे की बात तो थी कि दुनिया के किसी एक हिस्से में ऐसा होता था. बाकी हिस्सा सुरक्षित रहता था. पर अब सारी दुनिया साथ जीती-मरती है. इसलिए, अगर सभ्यता मिटती या तिरोहित होती है तो इसका प्रभाव सारी दुनिया पर पड़ता है. पहले की तरह इसका कोई हिस्सा बचता नहीं है. हो सकता है जिसे यूरोप का अंधेरायुग कहा जाता है, तब एशिया में कहीं बहुत शानदार युग रहा हो. इस तरह हम देखते हैं कि प्राचीन काल में अगर सफलता और प्रगति सीमित थी तो विनाश भी सीमित ही होता था. आज जब हम महान विकास के काल में जी रहे हैं तो यही काल बहुत बड़े विनाश का भी है. ऐसे में कोई मध्यमार्ग चुनना मुश्किल काम है– मध्यमार्ग अर्थात कुछ

पर अब सारी दुनिया साथ जीती-मरती है. इसलिए, अगर सभ्यता मिटती या तिरोहित होती है तो इसका प्रभाव सारी दुनिया पर पड़ता है. पहले की तरह इसका कोई हिस्सा बचता नहीं है.

ऐसा हो कि थोड़ा विकास भी हो जाये और विनाश भी हो. अब बड़ा सवाल यह है कि क्या हम इस विनाश से बच सकते हैं? मुझे लगता है हमें इस प्रश्न का उत्तर खोजना होगा.

मेरा सवाल यह भी है कि क्या विश्व की बौद्धिक आयु अवनति की प्रक्रिया में है? औद्योगिक क्रांति के कारण हुए विकास से जो वातावरण बना है, उसमें व्यक्ति के पास सोचने का अवसर ही नहीं है. निस्संदेह आज भी महान विचारक हैं, पर इस बात की पूरी सम्भावना है कि वे न सोचने वाले मनुष्यों की भीड़ में खो जायेंगे. यहां एक बात और भी सामने आती है– हम जनतंत्र की बहुत बात करते हैं. मुझे इसमें कोई संशय नहीं है कि जनतंत्र शासन के उपलब्ध तरीकों में सर्वश्रेष्ठ है. पर यह भी सही है कि जनतंत्र का अनियंत्रित विकास हुआ है. तकनीकी विकास के कारण परिवर्तन आया है. हर नागरिक को मतदान का अधिकार है. इस सबका नतीजा यह हुआ है कि आज औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप पनपे माहौल में पली-बढ़ी पीढ़ी के लोगों को न तो सोचने का वातावरण मिला है और न ही ऐसा कोई अवसर. भौतिक सुखों में जीने का अवसर आज पहले के किसी भी काल से अधिक है, पर हमारे पास सोचने का जैसे कोई मौका ही नहीं है. पर इसके साथ ही यह भी सही है कि जनतांत्रिक व्यवस्था में जनता ही अंततः शासन करती है या शासन के लिए अपने प्रतिनिधि चुनती है. लेकिन क्या वह सही व्यक्ति ही चुनती है? इसमें कुछ संदेह है. स्वयं राजनीति में होने के कारण मैं बिना किसी का अपमान किये बगैर कह सकता हूं कि वयस्क मताधिकार से चुने जाने वाले व्यक्तियों की गुणवत्ता में धीरे-धीरे ह्रास होता जा रहा है. निस्संदेह बहुत अच्छे लोग चुने जाते हैं, पर सोच की कमी के चलते उनकी गुणवत्ता कम होती जा रही है. प्रचार के आधुनिक तरीके उन्हें सोचने का अवसर नहीं देते. व्यक्ति शोर को सुनता है, उस पर अपनी प्रतिक्रिया देता है, उसे दोहराता है और फिर वह या तो तानाशाह बन जाता है या फिर गूंगा राजनेता जो असंवेदनशील है, जो किसी भी परिस्थिति में जी सकता है. अंततः वह जीत भी जाता है. क्योंकि बाकी शोर में डूब जाते हैं. यह असाधारण स्थिति है. हमारे लिए जनतंत्र के विकास की तारीफ करना गलत नहीं है. पर जो बात मैं कहना चाहता हूं, वह यह है कि बात सिर्फ जनतंत्र की नहीं है, आधुनिक जीवन ही बौद्धिकता को प्रोत्साहित नहीं करता. इसका सीधा-सा परिणाम यह होता है कि सभ्यता का ह्रास होता है, मनुष्यता दूषित होती है और अंततः दोनों धीरे-धीरे समाप्त हो जाते हैं.

(यूनेस्को द्वारा 1951 में आयोजित एक परिसंवाद में दिये गये भाषण के प्रमुख अंश)

धारणीय जीवन शैली को अपनाना होगा

● लालजी जायसवाल

रणीय विकास (सस्टेनेबल ग्रोथ) को हम अलग-अलग रूपों में जानते हैं, जैसे संधारणीय, सतत, दीर्घावधि, संपोषणीय, पोषणीय आदि लेकिन इसका निहितार्थ, प्रकृति संरक्षण के साथ मानव विकास ही है जोकि प्राकृतिक प्रणालियों की क्षमताओं को बनाये रखता है. विकास का वांछित लक्ष्य तभी प्राप्त किया जा सकता है जब हम अपने संसाधनों का परिरक्षण करें.

भारतीय परिप्रेक्ष्य में अमर्त्य सेन कहते हैं कि विकास का अर्थ है– 'मानवीय स्वतंत्रताओं का विस्तार' अर्थात लोग वैसे रह सकें जैसा कि वो रहना चाहते हैं, लेकिन सामाजिक मूल्यों के साथ. विकास पर बहुत से समाज विज्ञानियों ने बहुत कुछ कहा है. स्टींगलिड्स कहते हैं कि आधुनिक 'एलपीजी' (उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण) के युग में विकास एक बदलाव है, समाजों का बदलाव, संस्कृति, अर्थव्यवस्थाओं का बदलाव तथा मानव का अमूलचूल बदलाव. इसलिए विकास पोषण करने वाला होना चाहिए अर्थात हम विकास करते समय पर्यावरण का ध्यान रखें और संसाधनों को आगामी पीढ़ियों के लिए छोड़ दें. गांधीजी ने कहा है कि 'प्रकृति हमें अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए पर्याप्त संसाधन उपलब्ध कराती है लेकिन लालच को पूरा करने के लिए नहीं.' वैसे भी मनुष्य स्वभाव से लालची होता है और आज मनुष्य का यही लालच धारणीय विकास को विकृत करता जा रहा है और जीवनशैली से धारणीयता पृथक होती जा रही है. लिहाजा, धारणीय जीवन शैली का अर्थ जीवन से उपभोक्तावाद को कम करना तथा सुख की जगह आनंद को तरजीह देना है क्योंकि मनुष्य स्वभाव से सुखवादी और उपभोक्तावादी होता है और ये दोनों ही प्रवृत्तियां धारणीयता के लिए बाधक हैं.

प्रत्येक व्यक्ति स्वस्थ जीवन के लिए धारणीय शैली की इमारत बनाना तो चाहता है लेकिन उस इमारत के लिए ठीक-ठीक एक ईंट भी रखने का प्रयास नहीं करता क्योंकि धारणीय जीवन शैली के लिए हमें बौद्ध सूत्रों को खंगालना पड़ेगा. बौद्ध सूत्र कहता है कि जीवन में मध्यम मार्ग अपनाओ. यह मार्ग मध्यम है अर्थात कठिन नहीं है लेकिन आज की जीवन शैली के अनुरूप यह मध्यम मार्ग लोगों के लिए

कठिनतम मार्ग प्रतीत होता है, जिसकी वजह से केवल बौद्ध सूत्र पांडित्य प्रदर्शन के लिए याद तो रखे जाते हैं लेकिन क्रिया रूप में उतर नहीं पाता. यहीं से जीवन में धारणीयता का विलगाव प्रारम्भ हो जाता है. क्योंकि आज मनुष्य के जीवन में उपभोक्तावाद का ज़हर इतना घुल चुका है कि वह प्रकृति के संसाधनों को पूरी सीमा तक उपयोग करना चाहता है, भले इसका परिणाम समूचे मानव जगत को भुगतना पड़े. यहां यक्ष के अंतिम प्रश्न का उत्तर सटीक बैठता है कि प्रत्येक व्यक्ति यह जानता है कि मृत्यु होना तय है फिर भी उसे लगता है कि मृत्यु नहीं होगी. अर्थात् सच्चाई से स्वयं को भ्रमित रखता है. इसी वजह से हम अपना विनाश तो कर ही रहे हैं लेकिन आने वाली पीढ़ी के लिए भी विनाश का गहरा कुंड बनाते जा रहे हैं.

गांधीजी ने कहा है कि यदि धन एक सीमा तक कमाया जाए तो वह नैतिक होता है लेकिन पुरोधो कहते हैं कि धन एक चोरी है क्योंकि धन में सभी अनैतिकताओं के गुण विद्यमान होते हैं. वास्तविकता यह है कि मनुष्य अपने मूल भावना भूख, प्यास, सेक्स और नींद का गुलाम होता है. वहीं फ्रायड ने माना है कि मनुष्य की दो बुनियादी वृत्तियां हैं– जीवन और मरण. इसमें हर मनुष्य सोचता है कि वह जिए और सभी मरे. बस यही मूल भावना प्रकृति के दोहन के लिए उत्तरदायी होती है. और यहीं से मनुष्य का धारणीयता से अलगाव शुरू हो जाता है.

वैसे भी उत्तरआधुनिक युग आर्थिक विकास और प्रतिस्पर्धा का युग है जिसमें केवल आर्थिक वृद्धि पर ही ध्यान केंद्रित किया जाता है. लेकिन ध्यान देने योग्य है कि धारणीय विकास के दो प्रमुख शत्रु हैं– आर्थिक विकास और जनसंख्या वृद्धि. इसी का परिणाम है कि आज धारणीय विकास बाधित हो रहा है और समय-समय पर मनुष्य को प्रकृति का कोपभाजन भी होना पड़ रहा है, क्योंकि प्रकृति का दोहन करना मनुष्य अपना अधिकार मान बैठा है. प्रकृति में आज ऐसी कोई चीज़ नहीं जिसका मानव ने व्यापार न किया हो फिर वह चाहे हवा हो अथवा पानी. उसका यही लालच आज समस्त मानव जाति के लिए काल बनकर विश्व भर में लाखों लोगों की जान लील चुका है.

मनुष्य ने प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग अपनी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए किया होता तो ठीक था, लेकिन ऐसा नहीं हुआ. मनुष्य ने प्रकृति को अपना गुलाम बनाना चाहा. मनुष्य ने बस्तियां बसाने के लिए जंगल काटे, खेती तथा ज़मीन के लिए जंगलों में आग लगायी, प्राकृतिक संसाधनों का स्वामी बनने के लिए खनन किया, पानी का भरपूर दोहन भी किया, जनसंख्या वृद्धि कर प्रदूषण फैलाया, पवन

ऊर्जा के लिए पवन की गति को बाधित किया तथा अपनी आवश्यकता के लिए उद्योग लगाया जिसमें से निकलने वाले अपशिष्ट पदार्थ नदियों में प्रवाहित कर नदी की जैव विविधता को नष्ट किया. इस प्रकार अपनी इन करतूतों से प्रकृति के कार्यों में मनुष्य ने सदैव व्यवधान पैदा किया है. ऐसा करते-करते मनुष्य को यह भरोसा हो गया था कि उसने प्रकृति को पूरी तरह पराजित कर दिया है. इन सभी प्रकृति विरोधी कार्यों से हम आर्थिक विकास तो कर सकते हैं लेकिन धारणीय विकास से मनुष्य मोहताज ही रहेगा और इसकी भरपाई मनुष्य को समय-समय पर अपने विनाश से करनी होगी.

क्या हम सबको नहीं लगता कि हम आर्थिक प्रगति की इमारत, एक विस्फोटक पदार्थ पर निर्मित कर रहे हैं? उत्तर आधुनिक युगीन चिंतक ज्यां वोड्रिलार्ड, जैमेसन, जैक देरिदा, मिशेल फूको, ज्यां लियोटार्ड आदि ने आधुनिक युगीन विकारों की ओर संकेत किया था जिसे मनुष्य आज पूरी तरह विस्मृत कर चुका है, उनका कहना है कि आज का समय उपभोक्तावाद तथा दिखावा, झूठ, दम्भ और झूठी आर्थिक प्रगति का है. जिसकी वजह से मनुष्य अपना स्वत्व खोता चला जा रहा है. क्या हम सबको यह प्रतीत नहीं होता कि आज हमारा केवल आर्थिक केंद्रण हो रहा है और हम धन कमाने की मशीन बनते जा रहे हैं और पूंजीवाद को अपना सर्वस्व मान बैठे हैं, जिसमें प्रकृति के विनाश पर पूंजीवाद की इमारत खड़ी होती है. आज यह समीक्षा करने का दौर है कि आखिर हकीकत में पूंजीवाद ने हमें क्या प्रदान किया है? अगर हम ऐसा करते हैं तो स्पष्ट हो जायेगा कि वैश्वीकरण केवल घातक ही सिद्ध हुआ है. वैश्वीकरण ने ओजोन परत छरण, भूमंडलीय तापन, पीछे हटती नदियां, तथा वातावरण प्रदूषण और झूठी आर्थिक वृद्धि, झूठी प्रतिस्पर्धा और झूठे अहंकार तथा ढेर सारे मानव विनाशक वायरस के अलावा और कुछ भी नहीं दिया है. लेकिन यह कहना गलत नहीं होगा कि इस विनाशक महामारी ने मानव के लिए अनेक बार शिक्षा के पदचिह्न भी छोड़े हैं जिसमें मनुष्य की धारणीय जीवन शैली बहुत महत्वपूर्ण है.

नतीजतन, भारत के ऋषियों-मुनियों ने सदैव धारणीय जीवन शैली को अपना कर विकास करने का संदेश दिया है. आज इस कोरोना विषाणु जनित बीमारी के परिणामस्वरूप आपात स्थिति में भी यही संदेश मुखर हो रहा है. कोरोना महामारी जहां लाखों प्राण लील चुकी है, वहीं दूसरी ओर महर्षि की भांति पांडित्यपूर्ण शिक्षा और सुधार भी करती दिख रही है, जोकि एक आदर्श रूप है. लेकिन दुविधा है कि कहीं मानव इसकी शिक्षा को आने वाले समय में भुला न बैठे. लेकिन यह भी

सत्य है कि अगर मनुष्य इस महामारी से प्राप्त शिक्षा को अपना लेता है तो समूचा जीवन एक आदर्श रूप में होगा और विकास भी आर्थिक विकास मात्र न होकर धारणीय और सतत विकास होगा. क्या आपको नहीं लगता कि हम पुनः अपने आदर्श जीवन की ओर लौट रहे हैं. निश्चित तौर पर, इसलिए आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि एक महामारी हमें धारणीय जीवन शैली की सीख दे रही है. आज अगर हम धारणीय जीवन शैली की कल्पना करते हैं तो सर्वप्रथम धारणीय विकास की सोच बनानी होगी. हमें प्लास्टिक उपयोग से बचना होगा साथ ही पर्यावरण क्षरण को रोकना होगा. डेनिस डोनेला ने अपने शोध पत्र में कहा है कि अगर एक वृक्ष काटा जाए तो एक वृक्ष लगाना साम्यावस्था बनाये रखने के लिए पर्याप्त है. यहां ध्यातव्य है कि अगर हम एक वृक्ष काटते हैं और बदले में पांच पौधे भी लगाते हैं लेकिन उसकी नियमित देखभाल नहीं करते तो यह पर्यावरण दोहन के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है. पर्यावरणीय उदासीनता के कारण आज तमाम बीमारियां लोगों के जीवन में घर कर गयी हैं और व्यक्ति असमय काल के ग्रास बनता जा रहा है. अगर मनुष्य जीवन में धारणीय शैली अपना ले तो विकास स्वयं ही धारणीय बनता चला जायेगा. इसलिए स्पष्ट है कि मनुष्य पर्यावरणीय स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचा कर अपने आयुष्मान की कल्पना नही कर सकता. अगर मनुष्य को संतुलित जीवन की दरकार है तो उसे बौद्ध सूत्र 'मध्यम मार्ग' अपनाना ही होगा. जो व्यक्ति को स्वस्थ जीवन तो प्रदान करेगा ही, विकास भी आर्थिक विकास मात्र न होकर धारणीयता विकास को प्रतिबिम्बित करेगा जो मानव और जीव जगत के लिए हितकारी होगा. ❑

नैतिकता से बचेगी मनुष्यता

पिछले कुछ समय से साम्प्रदायिक हिंसा से लेकर सामूहिक बलात्कार तक के वीडियो वायरल हो रहे हैं. यह समाज के अमानुषिकता की ओर बढ़ने का ही संकेत है. ऐसे में मनुष्यता को कैसे बचाया जाये? इसका एक उत्तर है, नैतिकता से. जो भी मनुष्य के लिए करणीय है, वह नैतिक है. इसे धार्मिकता से जोड़ने की आवश्यकता नहीं. इसका सीधा रिश्ता मनुष्य के आचरण से है. मनुष्योचित आचरण ही मनुष्यता की रक्षा की गारंटी है. इसी आचरण से सम्पूर्ण मनुष्यता का सपना पूरा होगा. यह तभी सम्भव है जब धर्म, जाति, वर्ण, नस्ल की सीमाओं से ऊपर उठकर, हम मनुष्य मात्र के कल्याण को अपना लक्ष्य बनायें.

मनुष्यता

● मैथिलीशरण गुप्त

विचार लो कि मर्त्य हो न मृत्यु से डरो कभी
मरो परंतु यों मरो कि याद जो करें सभी.
हुई न यों सुमृत्यु तो वृथा मरे वृथा जिये
मरा नहीं वही कि जो जिया न आपके लिए.
यही पशु-प्रवृत्ति है कि आप आप ही चरे
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे.

उसी उदार की कथा सरस्वती बखानती
उसी उदार से धरा कृतार्थ भाव मानती.
उसी उदार की सदा सजीव कीर्ति कूजती;
तथा उसी उदार को समस्त सृष्टि पूजती.
अखण्ड आत्मभाव जो असीम विश्व में भरे
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिये मरे.

क्षुधार्थ रंतिदेव ने दिया करस्थ थाल भी,
तथा दधीचि ने दिया परार्थ अस्थिजाल भी.
उशीनर क्षितीश ने स्वमांस दान भी किया,
सहर्ष वीर कर्ण ने शरीर-चर्म भी दिया.
अनित्य देह के लिए अनादि जीव क्या डरे?
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे.

सहानुभूति चाहिए महाविभूति है वही;
वशीकृता सदैव है बनी हुई स्वयं मही.
विरूद्धवाद बुद्ध का दया प्रवाह में बहा
विनीत लोक वर्ग क्या न सामने झुका रहा?

अहा! वही उदार है परोपकार जो करे
वहीं मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे.

रहो न भूल के कभी मदांध तुच्छ वित्त में,
सनाथ जान आपको करो न गर्व चित्त में
अनाथ कौन हैं यहां? त्रिलोकनाथ साथ हैं,
दयालु दीनबन्धु के बड़े विशाल हाथ हैं.
अतीव भाग्यहीन है अधीर भाव जो करे,
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे.

अनंत अंतरिक्ष में अनंत देव हैं खड़े
समक्ष ही स्वबाहु जो बढ़ा रहे बड़े बड़े.
परस्परावलम्ब से उठो तथा बढ़ो सभी
अभी अमर्त्य-अंक में अपंक हो चढ़ो सभी.
रहो न यों कि एक से न काम और का सरे
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे.

मनुष्य मात्र बन्धु है यही बड़ा विवेक है,
पुराणपुरूष स्वयंभू पिता प्रसिद्ध एक है.
फलानुसार कर्म के अवश्य बाह्य भेद है,
परंतु अंतरैक्य में प्रमाणभूत वेद हैं.
अनर्थ है कि बंधु ही न बंधु की व्यथा हरे,
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे.

चलो अभीष्ट मार्ग में सहर्ष खेलते हुए,
विपत्ति विघ्न जो पड़ें उन्हें ढकेलते हुए.
घटे न हेल मेल हां बढ़े न भिन्नता कभी,
अतर्क एक पंथ के सतर्क पंथ हों सभी.
तभी समर्थ भाव है कि तारता हुआ तरे,
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे.

सभ्यता का संकट

● जयश्री सिंह

कोरोना काल का संकट वास्तव में संक्रमण का संकट नहीं, सभ्यता का संकट है. इस संकट ने हमें एक दूसरे के प्रति सशंकित कर दिया है. सामाजिक दूरी के नाम पर समुदाय से काट कर हमें अकेला कर दिया है. हम एक अदृश्य भय से डरे हुए है. इतना कि एक सामान्य से फल बेचने वाले से फल खरीदते समय उसके ठेले पर रखे लाल रंग के सेब को हाथ में लेने से डर रहे हैं जैसे वो सेब न हो कर परमाणु का गोला हो. इस भौतिक जगत में वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जीने वाला व्यक्ति आज भौतिक वस्तुओं में अदृश्य की कल्पना से डरने लगा है. वास्तव में हम वस्तुओं और व्यक्तियों से नहीं अपनी उस शंका और आशंकाओं से डरे हुए हैं जो संक्रमण के नाम पर हमारे दिल और दिमाग में उपजायी जा रही है. संक्रमण के डर से एक भरापूरा परिवार अपने बूढ़े मां-बाप को अकेला छोड़ कर भाग रहा है. लोग बीमार की सहायता करने से डर रहे हैं. पड़ोसियों को देख कर पड़ोसी मुंह फेर रहे हैं. एक दूसरे के ठीक सामने होते हुए भी लोग एक दूसरे को अकेला छोड़ रहे हैं. 'पॉजिटिव' इस साल का कितना भी खतरनाक शब्द क्यों न बन गया हो हमें ये नहीं भूलना चाहिए कि हमारा 'होना' ही हमारे लिए, हमारे परिवार और समाज के लिए सबसे बड़ी चीज है.

हम अपने आस-पास ऐसे तमाम लोगों को देख रहे हैं जो हर घर से कूड़ा इकठ्ठा कर रहे हैं. उस स्त्री को भी जो अपने छोटे-छोटे बच्चों को घर पर छोड़ कर हर सुबह सड़क पर झाड़ू लगा रही है. वह फेरीवाला जो गली मोहल्लों में घूम कर फल और सब्जी बेच रहा है. वह दूध वाला जो हर घर में सुबह-सुबह दूध पहुंचा रहा है. ऐसा नहीं कि उन्हें संक्रमण का डर नहीं है. वास्तव में उनके लिए भूख की समस्या संक्रमण की समस्या से कई गुनी बड़ी है. जिस समय सारे दुकानदार अपने दुकानों के सामने सोशल डिस्टेंसिंग का फीता बांध कर सामान बेच रहे हैं वहीं बगल वाली पंसारी की दुकान पर बैठा बूढ़ा और उसकी स्त्री इस बात से निश्चिंत है कि कोई अगला व्यक्ति उन्हें संक्रमण दे कर उनसे उनके हिस्से का जीवन नहीं

छीन सकता. उन्हें इस बात पर विश्वास है कि जो जीवन वह अपने जन्म के साथ ले कर आये हैं उसे पूरा भोग कर ही जाएंगे.

उस बूढ़े की सोच में, उन कूड़ा झाड़ने वालों में और हमारी सोच में इतना बड़ा अंतर कहां से आ गया? जीवन के प्रति जो आस्था उनके मन में है वो हम मध्यवर्ग के लोगों में क्यों नहीं? कौन है जो हम घर बैठे लोगों के दिमाग़ में घुस कर दिन-रात हमें डरा रहा है. अस्पताल में जगह न मिलने और शवों के ढेर लगे होने की खबरें दिखा कर हमसे हमारे आत्मविश्वास को छीन रहा है. हमारे जीने की जिजीविषा को कमज़ोर कर रहा है. शक के भ्रम में उलझाकर हमें अपने सामुदायिक जीवन से अलग-थलग कर रहा है.

हम क्यों ऐसे प्रभावों में जी रहे हैं? जो हमारी सभ्यता और संस्कृति पर हावी हो कर हमें भीतर से खोखला कर रही है. सावधानी के नाम पर हमें संवेदनशून्य कर रही है अथवा हमारी सोच को ही संकीर्ण बना दे रही है. शारीरिक दूरी महामारी की दृष्टि से बरती जा रही सावधानी हो सकती है लेकिन सावधानी और संकीर्णता के बीच के उस महीन फर्क को समझना भी ज़रूरी है. सतर्कता के नाम पर हमारी सोच पर संकीर्णता का हमला शारीरिक स्वास्थ्य पर हुए उस अदृश्य के हमले से कहीं अधिक घातक है. हमारा शरीर संक्रमित होकर फिर से स्वस्थ हो सकता है लेकिन हमने यदि अपनी सोच को हीक्कुचित कर लिया तो आने वाले समय में हम अपनी सभ्यता को संकट में पड़ने से नहीं बचा पाएंगे.

ये भी कुछ हद तक सही है कि अब तक जो कुछ था जैसा था महामारी के बाद फिर वैसा नहीं रहेगा. महामारी के बाद अब जब गांव का व्यक्ति शहर और देश का व्यक्ति विदेश पहुंचेगा तो बहुत कुछ बदल चुका होगा. इस दृष्टि से हमें ये तो मानना ही होगा कि इस समय हम केवल महामारी से ही नहीं गुजर रहे हम उस प्रक्रिया से भी गुजर रहे हैं जो एक छोटे से समय सीमा में एक बड़े रूपांतरण को रच रही है. इसलिए भी ज़रूरी है कि हम अभी इसी संक्रमण काल में ये तय कर लें कि आने वाले समय में हम कहां और किस हद तक रूपांतरण चाहते हैं.

संक्रमण के नाम पर शुरूवात में हुई तालाबंदी ने वैसे भी हमारे गरीब और मेहनतकश तबकों का बहुत नुकसान किया है. हमारी अनदेखियों ने उनसे उनकी रोजीरोटी छीन कर उन्हें लगभग दीन-हीन कर दिया है और ऐसा करके हमने उनका विश्वासघात ही किया है. वे हमारी बेरहमियों से घात खा कर गिरते-परते, चलते हुए किसी तरह अपने गांव पहुंचे हैं. अब जब दोबारा कभी वे शहर में लौटेंगे तो शायद ही हमारी निर्दयता को भुला पाएंगे. हमने

सामाजिक दूरी के नाम पर उनकी कर्मठता का अपमान करके अपनी संकीर्णता का ही परिचय दिया है. फिर भले ही हमने ऐसा महामारी के प्रभाव में किया हो. लेकिन इस धरती पर ये कोई पहली महामारी तो नहीं. इससे पहले भी तो लोगों ने महामारियों को झेला है. कोरोना नोवेल हो सकता है लेकिन महामारी का चेहरा नया नहीं है. महामारियां पहले भी आती रही हैं. लेकिन इनसे जो सीखने वाली बात है वो ये कि जीवन महामारी के पहले भी था और महामारियों के बाद भी रहा है. जीवन और जीवन के तमाम संघर्ष महामारी और संक्रमण से कहीं गहरे हैं. जीवन इतना सस्ता नहीं कि इसे शंकाओं-आशंकाओं में उलझा कर छोटा कर दिया जाए. या फिर परिस्थितियों के वश हो कर खुद को डरपोक अथवा कायर बना लिया जाये.

बेरोजगारी, अकेलापन, उदासी और निराशा जीवन के अंधेरे पक्ष का एक हिस्सा हो सकते हैं लेकिन जीने की आस्था और जीने का साहस किसी भी उदासीनता से बड़ी चीज़ है. जीते जी किसी को मृत्यु की ओर धकेलना जीवन का अपमान करना है. हमें जीवन का सम्मान करते हुए जीना है. डर और अकेला कर देने वाली आशंकाओं से निकल कर पूरे आत्मविश्वास और पूरी जिजीविषा के साथ केवल अपने लिए ही नहीं अपने सामुदायिक स्वास्थ्य के लिए जीना है. ❑

कला

धर्म, महामारी और चित्रकला !

● अशोक भौमिक

विश्व चित्रकला के इतिहास में हम लम्बे समय तक धार्मिक चित्रों को ही पाते है जहां आम जनों की उपस्थिति नगण्य-सी दिखती है. देवता के साथ भक्तों के रूप में और राजा की प्रजा के रूप में एक अनाम भीड़ की शक्ल में आम आदमी यदि दिखे भी हैं तो उनके सुख-दुख की कथा चित्रकला के दायरे से बाहर ही रही. कई सदियों पहले, पश्चिम के चित्रकारों ने इस स्थिति को बदला और आम आदमियों को चित्रों के केंद्र में ले आये. पाश्चात्य चित्रकला का वैभव और वैविध्य इसी आम जन के लिए ही है.

हमारे देश में, बहुत बड़ी संख्या में ऐसे चित्र मिलते हैं, जिनमें देवी-देवताओं की लीला-कथा का चित्रण है. ये कथाएं, जाहिर है कि शुद्ध रूप से कपोल-कल्पित हैं पर इतिहास में इन कथाओं को एक सच के रूप में प्रचारित करने में चित्रों की सबसे प्रभावशाली भूमिका रही है. आदिम समाज व्यवस्था से लेकर आज तक, शासित (और शोषित) वर्ग का आकार न केवल विशाल रहा है बल्कि यह अशिक्षित और

निरक्षर होने के कारण धर्म और राज-सत्ता के दुश्चक्रों का शिकार होता रहा है. भारतीय चित्रकला का इतिहास वास्तव में 'चित्रणों' (इलस्ट्रेशन) का ही इतिहास है. दो हज़ार वर्षों से ज़्यादा पुराने अजंता के भित्ति चित्रों में 'चित्रित' बौद्ध जातक कथाओं से लेकर, उन्नीसवीं सदी के राजा रवि वर्मा के चित्रों में धार्मिक और पुराण कथाओं के चित्रणों से हम परिचित हैं.

हमारे देश से भिन्न, पश्चिम की चित्रकला ने अपने होने का अर्थ 'केवल' चित्रणों में ही नहीं खोजा बल्कि वहां बड़े पैमाने में 'दस्तावेज़ी' (डॉक्यूमेंटशन) चित्र भी बने. इलस्ट्रेशन या चित्रण से डॉक्यूमेन्ट्री या दस्तावेज़ी चित्रों के फर्क को हम यूं समझ सकते हैं; इलस्ट्रेशन या चित्रण, प्राय: काल्पनिक पात्रों और उनसे जुड़ी काल्पनिक घटनाओं का चित्रण होता है, वहीं डॉक्यूमेंटेशन वास्तविक घटनाओं का दस्तावेज़ होता है. दस्तावेज़ी चित्रों में चित्रकार अपनी रचनाशीलता की छूट लेते हुए भी मूल घटना से दूर नहीं जाता है. कई बार मुग़लकालीन शासकों के लिखित जीवन इतिहास की घटनाओं को दस्तावेज़ के रूप में स्थापित करने के उद्देश्य से बने चित्रणों (जैसे बाबरनामा, अकबरनामा) का प्रयोग दिखता है, पर यदि इसे दस्तावेज़ मान भी लिया जाये तो भी यह तत्कालीन समाज के एक शासक और उसके आसपास नाम-परिचयहीन राजपुरुषों के ही दस्तावेज़ हैं, जिनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है.

इसी के बीच, कहीं-कहीं पर चित्रणों के माध्यम से शासक और ईश्वर की समानताओं या तादात्म्य को स्थापित करना भी उद्देश्य रहा है. ईसा पूर्व अठारहवीं शताब्दी में बेबिलोनिया में बनी हम्मूराबी की विधिसंहिता (कोड ऑफ़ हाम्मूराबी) एक फलक पर उत्कीर्ण है. इस फलक के ऊपर दिखाया गया है कि सूर्य देवता, राजा हम्मूराबी को यह विधिसंहिता दे रहे हैं, लिहाज़ा मनुष्य द्वारा इन देव-निर्देशों का उल्लंघन 'पाप' है. इस प्रकार के चित्र, जो राजा और देवता के बीच एक अटूट रिश्ते को एक दस्तावेज़ की तरह प्रामाणिक बना कर जनता के दिलोदिमाग में डाल देने के उद्देश्य से रचे गये, चित्रकला के बेईमान और जनविरोधी चेहरे को हमारे सामने उजागर करते हैं.

पर चित्रकला में दस्तावेज़ीकरण का चलन भी बहुत पुराना है. युद्ध और महामारी जैसी त्रासदियों ने चित्रकारों को बार-बार चित्र रचना के लिए उद्वेलित किया है. इन चित्रों में ऐसे अनेक चित्र हैं जो अपनी सृजनशीलता के लिए कला-इतिहास में भी उल्लेखनीय हैं. कई सदियों तक, ऐसे चित्रों में मृत्यु के साथ हालांकि पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक आदि का भी उल्लेख अनिवार्य रूप से हुआ है ताकि धर्म की पकड़, महामारी जैसी त्रासदियों में क्षीण न हो जाय.

पर बावजूद इसके, ऐसे मौकों पर ही ईश्वर के होने पर कला ने प्रश्न भी उठाये हैं.

यूरोप में 1348 से आरम्भ होकर 1381 तक चले प्लेग की महामारी ने यूरोप की आधी आबादी को लील लिया था. इस महामारी का सबसे सटीक वर्णन इटली निवासी इतिहासकार एगनोलो डी टुरा ने किया था. एगनोलो के अभिलेखों से पता चलता हैं कि इस जुकाम जैसे रोग में बांहों के नीचे– कांख में और पेट और जांघ के बीच के भाग में सूजन होती थी और रोगी की जल्द ही मृत्यु हो जाती थी. एगनोलो डी टुरा ने इस महामारी में अपने पांचों बच्चों और अपने पत्नी को खोया था. चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में लिखे महाकाव्य, 'पीअर्स प्लॉवमेन' में अंग्रेज़ पादरी विलियम लैग्लैंड ने लिखा था, 'अब ईश्वर बहरा हो गया है, अब वह हमारी नहीं सुन पा रहा. यह हमारे पापों की सज़ा ही है कि ईश्वर मनुष्य को पीस कर धूल में तब्दील कर रहा है.' इस महामारी ने मध्ययुगीन यूरोपीय समाज के सौहार्द को भी बिगाड़ दिया था. ईसाईयों द्वारा, जर्मनी और अन्य देशों में यहूदियों की हत्या की गयी और उन्हें ज़िंदा जलाया गया. इतिहासकार ज्यां द विनेट ने इसे, 'ईसाइयों द्वारा सुनियोजित ढंग से यहूदियों को इस महामारी के लिए दोषी ठहराकर किया गया नर-संहार' माना था.

आज इक्कीसवीं सदी में हमारे आस-पास, इस मध्ययुगीन बर्बरता को पुनर्घटित होते देखना दुर्भाग्यपूर्ण ज़रूर है लेकिन इस पर हमें आश्चर्य नहीं करना चाहिए, क्योंकि यह एक सुनियोजित और लम्बी तैयारी की अभिव्यक्ति है. एक ओर प्लास्टिक सर्जरी से देवताओं को पैदा करने

के कौशल के माध्यम से विज्ञान को परिभाषित करना और दूसरी ओर गो-माता, गो-मूत्र, गोमांस-भक्षण आदि के इर्दगिर्द एक खास धर्म के खिलाफ नफरत की फसल, मौजूदा कोरोना काल में ही काटी जा सकती थी.

चित्रकारों ने इस त्रासद समय को कई रूपकों के माध्यम से प्रस्तुत किया. फ्रांस के ईसाई मठ, सेंट आंद्रे डी लावोडू के एक भित्ति चित्र में चित्रकार ने 'प्लेग रोग' को एक स्त्री के रूप में चित्रित किया है, जिसके हाथ में बहुत सारे तीर हैं. चित्र के दोनों और मरे या मरते हुए लोग हैं, जिनके गर्दन और कांखों में तीर धंसे हुए हैं. यह चित्र, प्लेग महामारी का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज़ी चित्र हैं जिसमें लोगों के तीर चुभने के स्थान से रोग के विशेष लक्षण को चिह्नित किया गया है पर इसके साथ ही एक स्त्री को महामारी के रूप में चित्रित करना, विश्व भर में धर्मों का स्त्री के प्रति दुर्भाग्यपूर्ण रवैये की पुनरावृत्ति ही है.

इसी महामारी का एक और चित्र हमें कवि और इतिहासकार गीलेस ली मुइसिस (1272-1352) के अभिलेखों में मिलता है. 'बेल्जियम के टूरनाइ शहर में प्लेग से मृत लोगों को दफ्न करने आये लोग' शीर्षक के इस मिनिएचर या लघु चित्र में हम मृत लोगों की ताबूतों को लेकर कब्रिस्तान पहुंचे लोगों की भीड़ को देख पाते हैं. चित्र में, एक ताबूत को जहां चार लोगों ने मिल कर थामा हुआ है वहीं और लोग अपने-अपने परिजनों के ताबूतों को अकेले ही अपने कंधे पर उठा कर कब्रिस्तान पहुंचे हुए हैं. यह चित्र, उस महामारी की भयावहता का भी एक सार्थक दस्तावेज़ है, जहां मृतकों के ताबूत ढोने तक के लिए लोग नहीं बचे थे.

उपरोक्त दोनों चित्रों में हम 'परिप्रेक्ष्य' (पर्सपेक्टिव) की अनुपस्थिति और एक सपाटता को साफ़ देख सकते हैं. यह सपाटता, नवजागरण पूर्व बने चित्रों में ही दिखाई देती है. चित्रकला के इतिहास में, नवजागरण काल के बाद चित्रों में परिप्रेक्ष्य का आना एक बहुत बड़े परिवर्तन को रेखांकित करता है.

चौदहवीं शताब्दी का ब्यूबोनिक प्लेग की विनाशलीला ने गरीब-अमीर, शिक्षित-अशिक्षित, स्त्री-पुरुष किसी को नहीं छोड़ा और इससे गुज़र कर यूरोप की जनता के सोच में व्यापक परिवर्तन हुए. राष्ट्रों के बीच रिश्तों में बदलाव, व्यापार और आर्थिक क्षेत्र में नये समीकरणों का बनना शुरू हुआ. कई इतिहासकारों का मानना है, कि धर्मांधता और नियतिवाद के खिलाफ वैज्ञानिक और मानवतावादी चिंतन का सूत्रपात भी इसी महामारी के बाद हुआ. इतिहास की इन घटनाओं को समझते हुए हम सहज ही उम्मीद कर सकते हैं कि 'उत्तर-कोरोना काल' आधुनिक दुनिया में बहुत बड़ा परिवर्तन लाएगा. ❑

आग का दरिया

● परवेज अहमद

बात 1989 की है. जानी मानी लेखिका कुर्रतुल ऐन हैदर (ऐनी आपा) को ज्ञानपीठ सम्मान दिये जाने घोषणा हुई थी. नवभारत टाइम्स के कार्यकारी सम्पादक सुरेंद्र प्रताप सिंह (एसपी) ने मेरे सामने चैलेंज रखा कि रविवार्ता के अगले अंक में कवर स्टोरी के रूप में ऐनी आपा का इंटरव्यू जाना चाहिए. वक्त सिर्फ़ दो दिन का था. मैंने उनके घर फोन किया पता लगा वह अलीगढ़ में थीं. काम मुश्किल हो गया था. कहीं से अलीगढ़ का नम्बर लिया. ऐनी आपा से बात हुई. वह दूसरे दिन दिल्ली वापस आ रही थीं. मुलाकात का वक्त तय हो गया. तयशुदा वक्त पर मैं, ज़ाकिर बाग, ऐनी आपा के फ्लैट पर पहुंच गया.

कुछ देर बाद अपने खास अंदाज़ में ऐनी आपा आकर बैठीं, होठों पर सुर्ख लिपस्टिक, काले फ्रेम की ऐनक और ऐनक से झांकतीं दो ज़हीन आंखें. फोटो ग्राफ़र भी मेरे साथ था.

ऐनी आपा ने मेरे कान में फुसफुसाया, 'पहले अपने फ़ोटोग्राफ़र को दफ़ा करो.' मैंने कहा कि आपकी तस्वीरें भी तो लेनी हैं. वह बोलीं,' फोटो मैं दे दूंगी, इन्हें रवाना करो.' जो उन्होंने कहा, वह करना पड़ा.

बातचीत शुरू हो उससे पहले ही उन्होंने मुझे खबरदार कर दिया, 'नो पर्सनल क्वेश्चन', बातचीत शुरू हुई. क्या उनकी

ज़बान, क्या उनका बयान. लगता था वह बोलती जाएं, आप सुनते जाएं. तभी मुझसे एक बेवकूफी हो गयी. ऐनी आपा ने शादी की नहीं थी. इसीलिए शादी उनकी दुखती रग थी और मेरा हाथ उसी दुखती रग पर पड़ गया था.

शादी शब्द सुनते ही वह आगबबूला हो गयीं, 'मैंने कहा था न कोई पर्सनल सवाल नहीं, गैट आउट, दफ़ा हो जाओ यहां से.' वह पांव पटकती हुई ऊपर कमरे में चली गयीं.

मैं डर गया. समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करूं. एक अच्छा खासा इंटरव्यू हाथ से निकल रहा था.

मैं अपना सामान समेट कर निकल रहा था तभी उनकी कामवाली आयी और उसने बताया कि खाला का गुस्सा तो दस पंद्रह मिनट का होता है, आप थोड़ी देर बाद आ जाना, वह ठीक हो जाएंगी.

मुझे उम्मीद की किरण नज़र आयी. इधर-उधर घूम कर मैं वापस पहुंचा. ऐनी आपा ऊपर से नीचे आयीं. वह एकदम नार्मल थीं. साथ में अपने दो फोटो भी ले आयीं थीं. उनके होठों की लिपस्टिक और गहरी हो चुकी थी. यह भी साफ हो गया था कि हसीन दिखने की उनकी चाह, किसी आम महिला से कम नहीं थी. तस्वीरों में भी वह अपने दोनों हाथों से चेहरे की झुर्रियां छुपाने की कोशिश करती दिखाई दे रहीं थीं. इसी के साथ फोटोग्राफ़र को भगा देने का मक़सद भी साफ़ हो गया था.

बातचीत फिर शुरू हुई. लेकिन जैसे ही मेरी ज़बान से शब्द पाकिस्तान निकला वह फिर नाराज़ हो गयीं. इस बार उन्होंने गेट आउट तो नहीं कहा लेकिन खुद ही गुस्से में ऊपर चले गयीं. मैं भी बैठा रहा. दस पंद्रह मिनट बाद वह खुद ही वापस आ गयीं.

मैंने उनसे कहा कि मेरा सवाल यह था कि आप पाकिस्तान क्यों चली गयीं थीं और फिर वापस कैसे आ गयीं?

उन्होंने मुझे घूरा और पूछा, 'तुम बताओ, अगर तुम लड़की होते और तुम्हारी उम्र तेरह साल होती, तुम्हारा पूरा खानदान पाकिस्तान जा रहा होता तो क्या तुम यहीं रुक जाते?'

मैंने कहा कि यह बात ज़्यादातर लोगों को पता नहीं थी न. फिर वापसी कैसे हुई?

उन्होंने बताया, 'मेरा दिल वहां लग नहीं रहा था. नेहरू जी सज्जाद ज़हीर और उनके साथियों को बुलवा चुके थे. मैंने भी उन्हें खत लिखा कि मैं भी वापस आना चाहती हूं. उनका जवाब आया कि अब हालात बदल चुके हैं. तुम्हें बुलाना आसान नहीं है. बेहतर है तुम इंग्लैंड जाकर वहां की शहरियत लेलो, मैं तुम्हें वहां से बुलवा लूंगा. मैंने नेहरूजी की सलाह पर अमल किया और इंडिया आ गयी.'

इतना कह कर वे उठ गयीं. मैं भी

रिलेक्स हो चुका था और ऐनी आपा भी मुस्कुराने के मूड में आ गयीं थीं.

मैंने कहा, 'आप मुझे इतना बेइज़्ज़त कर चुकी हैं कि अगर अब चपत भी मार देंगी तो कोई फर्क़ नहीं पड़ेगा. इसलिए मैं एक सवाल का जवाब लिये बग़ैर नहीं जाऊंगा.'

> उन्हें भ्रम था कि हिंदी में हालात बहुत अच्छे हैं. जब हमने उन्हें बताया कि हिंदी में भी खरीदकर पढ़ने का रिवाज कम है, और वहां भी प्रकाशक किसी को पैसे नहीं देते, तब उन्हें हल्का-सा सुकून मिला.

दरअसल ऐनी आपा एक लम्बे समय तक बाम्बे (अब मुम्बई) में थीं. वह इलस्ट्रेटेड वीकली में साहित्यिक सम्पादक थीं. तब उनकी और उर्दू और फिल्मी दुनिया की बड़ी हस्ती ख्वाजा अहमद अब्बास की शादी की अफवाह बड़ी ज़ोरों से फैली और फिर गायब हो गयी थी. एसपी सिंह भी उन दिनों बाम्बे में ही थे. आपा के पास, इंटरव्यू के लिए रवाना होने से पहले एसपी सिंह ने मुझे उनके पल पल में बदलनेवाले मूड के बारे में इशारा करते हुए इसी घटना का उदाहरण दिया था. अब मैं वही कहानी ऐनी आपा की ज़ुबानी सुनना चाहता था.

उन्होंने मुझसे वादा लिया था कि मैं वह लिखूंगा नहीं. मैंने कभी लिखा भी नहीं. मैं आज भी ऐनी आपा की रूह से माफ़ी के साथ इस बात का ज़िक्र करने जा रहा हूं. हो सकता है कुछ लोगों को यह घटना सही न लगे. मैं भी इसकी सच्चाई का दावा नहीं कर रहा हूं. मैं तो पूरी ईमानदारी के साथ वही बात बताने जा रहा हूं जो ऐनी आपा ने मुझसे कही थी. और फिर आपा और एसपी सिंह की बात पर यकीन न करने की भी कोई वजह नहीं है.

आपा ने बेहद सहज भाव से बताया, 'शादी तय हो चुकी थी. दावतनामे छप चुके थे. बाद में बट भी चुके थे लेकिन जिस दिन वो जनाब (ख्वाजा साहब) मुझे दावतनामा दिखाने आये तो मैं उन्हें देखकर हैरान रह गयी. उन्होंने गहरे ऊदे रंग का सूट पहना हुआ था. मैंने सोचा कि मैं एक ऐसे शख्स से शादी करने जा रही हूं जिसे कपड़े पहनने तक की तमीज़ नहीं है. बस मेरा इरादा बदल गया और मैं शाम की ट्रेन से अलीगढ़ के लिए रवाना हो गयी.'

यानी जब बम्बई में निकाह की तैयारी चल रही थी तो दुल्हन अलीगढ़ पहुंच चुकी थी.

बहरहाल रविवार को इंटरव्यू छप गया था.

सोमवार को मैं दफ्तर पहुंचा तो एसपी सिंह का बुलावा मेरा इंतज़ार कर रहा था. मैं उनके कैबिन में पहुंचा तो पाया ऐनी आपा और हमारे प्रधान सम्पादक आदरणीय

राजेंद्र माथुर भी वहां पहले से ही मौजूद थे. काफ़ी देर तक वहां सन्नाटा तना रहा. मैं समझ गया कि आपा ने 'सुप्रीम कोर्ट' में मेरी तगड़ी शिकायत कर दी है. कुछ क्षण बाद एसपी सिंह ने चुप्पी तोड़ी, 'आपा, यह हैं आपके अपराधी.' आपा ने बिना मेरी तरफ देखे रविवार्ता की कापी निकाली और शीर्षक की तरफ इशारा करके पूछा कि यह क्या है? शीर्षक था, 'आम आदमी मेरा विषय कभी नहीं रहा' मैंने कहा कि आपने ऐसा कहा था. मेरे टेपरिकार्डर में है. आपा तपाक से बोली, 'मैंने कब कहा कि मैंने ऐसा नहीं कहा था, लेकिन हैडलाइन लगाने के लिए किसने कहा था?'

अब इस बात का मेरे पास कोई जवाब नहीं था. एसपी ने तुरंत इंसाफ कर दिया, 'आपा, अब जो हो गया सो हो गया. क्षमा कर दीजिए. हां...इनकी सज़ा यह है कि यह आपको कहीं अच्छी जगह लंच करवाएंगे.' माथुरजी ने एक सज़ा और जोड़ दी, 'और जाकिर बाग तक छोड़कर आएंगे.' मैंने फौरन सज़ा कबूल कर ली. मैं उन्हें त्रिवेणी कला संगम के कैंटीन ले गया. आपा पूरे फार्म में थीं. उनकी ज़िंदगी के, उर्दू की अदबी दुनिया के कई दिलचस्प किस्से कहानियां उनसे सुनने को मिले. उनके साथ गुज़ारा वह वक्त, किसी कीमती सरमाये की तरह आज भी मेरे पास महफ़ूज़ है.

इस बीच में आपा से एक दो सरसरी मुलाकातें हुईं लेकिन उनके साथ बैठने का कभी मौका नहीं मिला.

यह 1997 की बात है. साहित्य अकादमी में उनकी तकरीर थी. मैं खासतौर से उन्हें सुनने और उनसे मिलने की गरज से वहां पहुंचा था. आपा की उर्दू अंग्रेज़ी दोनों ज़बानों पर समान महारत थी. चालीस पैंतालीस मिनट का उनका विद्वतापूर्ण भाषण चलता रहा. मैंने देखा उनके बाएं हाथ पर प्लास्टर चढ़ा हुआ था. भाषण खत्म होते ही मैं उनसे मिलने पहुंचा. वह मेरे साथ पीछे की सीटों पर आकर बैठ गयीं.

मैंने उन्हें बताया कि मैं अखबार को अलविदा कहकर टीवी में आ गया हूं. मैंने उनसे कहा, 'आपा, मेरे लिए थोड़ी फुर्सत निकालिए, मैं आप पर फिल्म बनाना चाहता हूं.'

उन्होंने प्लास्टर बंधा हाथ मेरे सामने कर दिया. मैंने पूछा, 'अरे... यह क्या हो गया?'

आपा तंज़िया अंदाज़ में बोली, 'मैं गुसलखाने में फिसल गयी, मेरी हड्डी टूट गयी, तब तो तुम्हें पूछने तक फुर्सत नहीं मिली, हां...फिल्म बनाने की फुर्सत ज़रूर मिल जाएगी.'

मैंने कहा, आपा हमें पता ही नहीं चला.

वह सपाट लहजे में बोलीं, 'पता करने से पता चलता है.' तभी एक युवा महिला पत्रकार उनके पास आयीं और बोलीं,

'मैडम, मुझे आने में थोड़ी देर हो गयी, प्लीज़ यह बता दें कि आपने क्या बोला.'

आपा ने ऊपर से नीचे तक उन मोहतरमा को देखा और कहा, 'मुझे क्या पता के मैंने क्या बोला...कमाल के हो तुम लोग...मैं ही बोलूं और मैं ही याद रखूं.'

उसके बाद सन् 2004/05 में पत्रकार मित्र शाज़ी ज़मां और मधुकर उपाध्याय के इसरार पर मैंने आपा से मुलाकात की कोशिशें कीं. तकरीबन एक हफ्ते की जद्दोजहद के बाद उन्होंने कई शर्तों के साथ पंद्रह मिनट का वक्त दिया.

तब तक वह नोएडा आ चुकी थीं. हम तीनों, तीन बजे तक घर पहुंचे थे. पहले पंद्रह मिनट में ही हमें अंदाज़ा हो गया था कि उस घर में, उनके हमसफ़र थे... किताबों से भरे शेल्फ, उनकी कामवाली और उसके बच्चे.

बातों बातों में वह न जाने कितनी बार अपने बचपन और जवानी के दौर का तवाफ़ करके लौट आयीं. उस ज़माने की अदबी महफिलों और अदबी हस्तियों को याद करती रहीं.

उनकी पहली तकलीफ़ तो यही थी कि अब न किसी का फ़ोन आता है, न कोई मिलने आता है और आसपास न कोई बात करनेवाला है. अगर बात करनेवाला कोई मिल भी जाए तो ज़ेहनी गिज़ा नहीं मिलती.

दूसरी यह कि जिस ज़बान में उन्होंने लिखा उसके पढ़नेवाले कम होते जा रहे हैं. उन्हें यह भ्रम था कि हिंदी में हालात बहुत अच्छे हैं. जब हमने उन्हें बताया कि हिंदी में भी किताब खरीद कर पढ़ने का रिवाज बहुत कम है, और वहां भी प्रकाशक किसी को पैसे नहीं देते, तब उन्हें हल्का-सा सुकून मिला. उनकी हर बात में, लहजे में... एक आह सी निकलती महसूस होती रही.

अब हालत यह थी कि हम उठने की कोशिश करते तो वह हमें रुकने के लिए चाय का लालच देतीं. हालांकि उनके पास बैठने के लिए, उनकी बातें सुनने के लिए किसी लालच की ज़रूरत नहीं थी. पंद्रह मिनट की मुलाकात तीन घंटे तक खिंच गयी थी. वह और भी बातें करना चाहती थीं लेकिन हम लोगों की भी अपनी मज़बूरियां थीं. आखिर हमें उठना पड़ा. वापसी में हम तीनों पूरे रास्ते खामोश रहे. ज़ाहिर है तीनों, इस मुलाकात के बारे में अपनी अपनी तरह से सोच रहे थे. बिदा होते वक्त शाज़ी ज़मां ने मुझसे पूछा था कि क्या आप कुछ लिखेंगे? मैंने कहा था कि उनसे किये गये वादे के मुताबिक तो फिलहाल कुछ नहीं लिखना है लेकिन जब कभी लिखने का मौका मिलेगा तो यही लिखेंगे कि कैसे आग का दरिया, देखते ही देखते 'दर्द के दरिया' में तब्दील हो गया. ❑

कहानी

आत्मविश्वास

● हरिसुमन बिष्ट

अपनी बालकनी में बैठे मैं अशोक के पेड़ को निहारता रहता था, वहां कुछ उड़ती तितलियां और एक पिद्दी चिड़िया को भी. मैं पिद्दी को निहारता और हर्षिका तितलियों को. दोनों का निहारना अलग-अलग था. हर्षिका अभी छोटी है, तितलियों के साथ उड़ना चाहती है और मैं पिद्दी को देखकर खुश हो जाता. एक दिन हर्षिका ने मुझे पूछा, 'दादू! आप तितलियों को क्यों नहीं निहारते. आपको वे अच्छी नहीं लगती हैं?'

'मैं तितलियों को देखते रहने से डरता हूं, कहीं उन्हें मेरी नज़र न लग जाए. देखते रहने की आदत भी नहीं डालना चाहता. एक दिन वह उड़कर दूर चली जाएगी, फिर ना मालूम कब मिलना होगा, नहीं दिखेगी, तो दुख होगा. मुझे पिद्दी को देकना अच्छा लगता है. वह सुबह-सुबह अशोक पर आती है, मुझे नींद से जगाती है, गुनगुनाती है. मेरा दिन अच्छा कट जाता है.'

'दादू! यदि वह किसी सुबह नहीं आयी तो?' हर्षिका ने संदेह प्रकट किया.

'वह आयेगी, उसने कभी नागा नहीं किया.' मैंने आत्मविश्वास भरे शब्दों में कहा.

सचमुच एक दिन पिद्दी नहीं आयी, मैं परेशान होने लगा. मुझे विचलित देखकर हर्षिका बोली, 'दादू! पिद्दी नहीं आयेगी. बाहर लाकडाउन है.'

'नहीं बेटी! पिद्दी ज़रूर आयेगी, वह अशोक पर ही रहती है.' मैंने कहा.

'फिर भी नहीं आयी तो...'

'ऐसा नहीं कहते, वह आती ही होगी. वह भी तो नटखट है तुम्हारी तरह.'

'देखो, अशोक की पत्तियों में हलचल है. पिद्दी वहीं है. बेटी पिद्दी! बाहर आओ, हर्षिका तुम्हारे लिए खाना लायी है.'

'मैं यहीं ठीक हूं दादू! बाहर कोरोना है.' पिद्दी ने कहा.

'कुछ खा लो, फिर अशोक पर बैठी रहना.' मैंने समझाते हुए कहा.

'नहीं दादू! मैं यहीं ठीक हूं, खाने की इच्छा नहीं है.' इस समय उसके शब्दों में मुझे रुष्टता लगी.

'नहीं दादू! मैं ठीक हूं, अशोक पर

रहूंगी तो भूख से, बाहर रहूं तो कोरोना से– मरना तो है ही एक दिन.'

पिद्दी का ऐसा कहना मुझे अच्छा नहीं लगा. रोने का मन हुआ, पर रो नहीं सका. मैंने हर्षिका का हाथ पकड़ा और उसे घर के भीतर ले आया.

एकाएक फिर से बाहर अशोक की पत्तियों में छटपटाहट हुई.

हर्षिका बाहर दौड़ी चली आयी और उसके पीछे-पीछे मैं भी. मैं कुछ समझ पाता, उससे पहले एक बाज पर नज़र पड़ी, वह तेज़ी से ऊंचा उड़ रहा था– अशोक से भी ऊंचा. मैंने अशोक की तरफ देखा, फिर हर्षिका की ओर. इस समय हर्षिका फफक-फफक कर रो पड़ती, उससे पहले मैंने कहा. 'अशोक की पत्तियां के साथ कुछ पंख भी गिरे हैं, ये पंख पिद्दी के हैं– यह आवाज़ इन्हीं दोनों के गिरने की थी, बाज के पंजों में उलझने तक, भूखी पिद्दी खूब लड़ी होगी.'

हर्षिका अवाक-सी मेरे चेहरे को देखती रही, वह कुछ समझ कर प्रश्न करती, मैं डर गया, कहा, 'भीतर चलो बेटी! यहां कोरोना है.'

मैंने उसका हाथ भीतर ले चलने को थामा.

उसने मेरा हाथ ज़ोर से झटक दिया जैसे दुख से कहने को कि मुझे मन हलका करने दो. परंतु उसने ऐसा कुछ प्रकट करने के आत्मविश्वास से कहा, 'मैं बड़ी हो गयी हूं दादू! अब डर नहीं लगता...'

इस समय उसके आसमान निहारते आंखों और शब्दों में रौब था. ❑

भगवान की पत्नी

सात-आठ साल का एक बच्चा जूतों की एक बड़ी दुकान के शो केस को देखता खड़ा था. वह कभी अपने नंगे पैरों को देखता, कभी शो केस के जूतों को. वहां से गुज़रती एक महिला उसे देख कर रुक गयी. उसने देखा बच्चे ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना-सी की. उससे रहा नहीं गया. बच्चे का हाथ पकड़ कर उसने प्यार से पूछा, वह क्या सोच रहा है. बच्चे ने भोलेपन से कहा, 'भगवान से प्रार्थना कर रहा हूं, मुझे यह जूते दिला दे'. महिला का दिल पसीज गया. वह बच्चे को दुकान में ले गयी. उसे जूते दिलाये, मौजे भी. फिर उसके पैर धोकर उसे पहनाये भी. जब वे दुकान से निकले तो बच्चे ने उससे पूछा, 'क्या आप भगवान की पत्नी हैं?'

साक्षात्कार

छायावाद के चार कवियों में से एक 'कवियों में सौम्य संत सुमित्रानंदन पंत' का दुर्लभ रेडियो साक्षात्कार

मानव स्वभाव करता अपूर्ण को पूर्ण

पंत जी, आपने एक बड़ा एकाकी जीवन बिताया है लेकिन साथ ही आपका मित्र समुदाय भी बहुत बड़ा रहा है. दोस्तियां बनीं, दोस्तियां टूटीं, उनका प्यार, उनकी खलिश, दोनों आपने पायी. उसके बारे में कुछ कहें?

बात यह है कि मैंने कभी एकाकी अनुभव नहीं किया आपसे सच कहता हूं. इतना ऊहापोह मेरे मन में, इतना आंदोलन उनके विचारों का मेरे मन में रहा है. मैंने कभी अपने को एकाकी अनुभव नहीं किया और मेरे चारों ओर जो मित्र थे वो भी इस युग के, एक तरह से अपने अपने युग के भिन्न विभागों के प्रतिनिधि रहे हैं. प्रसाद जी ने कामायनी देकर इस भौतिकी युग को एक अंतर्दृष्टि देने का प्रयत्न किया. निराला मेरे बहुत बड़े मित्र रहे हैं लेकिन हम बहुत ही अलग अलग स्वभाव के हैं. देखिए स्वभाव से मित्रता में कोई फर्क नहीं पड़ता. निराला जी हमारे युग के एक प्रतिनिधि कवियों में रहे हैं छायावाद के. महादेवी की गीत भावना अद्वितीय रही है. मैं कहता हूं कि महादेवी जी छायावाद की नवनीत रही हैं, माखन रही हैं. इतनी मिठास और इतनी वेदना उनमें है और इतना सौंदर्यबोध उनके काव्य में मिलता है. उसके बाद छायावादोत्तर के मित्र भी हैं. बच्चन मेरा मित्र रहा है. मैं उसके घर में बहुत ही ज़्यादा रहा हूं. और ऐसे छोटे-मोटे मतभेद बराबर होते रहते हैं मित्रों में लेकिन इससे हमारी मित्रता पर फर्क नहीं पड़ता. तेजी जी और बच्चन मेरे परम मित्रों हैं. नरेंद्र तो मेरा छोटा भाई-सा रहा है. उसकी भी अपनी एक भावना का संसार रहा है. बच्चन, नरेंद्र, दिनकर. दिनकर को कौन भुला सकता है. 'इस युग का सूर्य हूं मैं' दिनकर कहता है. तो सूर्य तो दिनकर रहे ही हैं. हमारा जो युग था, उसमें एक से एक रहे हैं, जिसे अंग्रेज़ी में 'लुमिनरी' प्रकाश केंद्र कहते हैं. इससे मैं अपने आप को बहुत सौभाग्यशाली मानता हूं.

आपको ज़िंदगी दोबारा पूरी की पूरी जीने को

मिले तो कौन सी ऐसी इच्छा है जो अपूर्ण रह गयी जिसे आप ज़रूर पूरा करना चाहेंगे?

मैं चाहता हूं संसार से विषमता मिट जाए. यह संसार मनुष्य के रहने के लायक हो जाए. यह धरती मानवीय हो जाए. इसमें चाहे स्त्री पुरुष का सम्बंध हो चाहे पुरुष पुरुष का. एक तरह का संतुलित और सजीव सम्बंध बन जाए. जो हम स्वर्ग की कल्पना करते हैं वह धरती पर ही साकार हो जाए. और यह बिल्कुल निश्चय है कि स्वर्ग और कहीं नहीं, मनुष्य के भीतर है. उसे अपने भीतर के स्वर्ग को धरती पर प्रतिष्ठित करना है. समस्त आगे आने वाले प्रयत्न इसी ओर हैं. यह संक्रांति का, विघटन का युग है. पुराने मूल्य विघटित हो रहे हैं.

आपका हमेशा एक खास विन्यास रहा है कपड़ों और बालों के बारे में. पूरी एक रूप छटा बनी रहती है पाठकों के मन में. कैसे आपने अपना विन्यास बनाया ?

क्या बतलाऊं. मैं यह कह सकता हूं मैं तो जन्मजात हिप्पी पैदा हुआ हूं. मैंने छुटपन से ही बाल रखे हैं. नेपोलियन का चित्र देखा था जब मैं फोर्थ क्लास में था. उसके बड़े घुंघराले बालों ने मुझे बहुत आकर्षित किया था. तब से मैंने बाल रख लिए. क्योंकि मैं घर में सबका लाड़ला था, छोटा था तो पोशाकें भी तरह-तरह की पहनी है. मेरे कोट भी खास ढंग के होते थे और टाई भी मैं पहनता था और टोपी भी तरह-तरह की पहनता था. मखमल के कपड़े मुझे बहुत पसंद थे. लेकिन फिर ऐसा हुआ कि जब मैं साहित्य के क्षेत्र में आया और वहां इलाहाबाद में एक बार द्विवेदी मेला हुआ तो उसमें मेरे मित्रों ने मेरे गले की टाई खींचकर कर फेंक दी. तब से मैंने सोचा कि टूटा कोट अच्छा नहीं लगता तो बंद गले का कोट पहनने लगा. और अब तो मैं भारतीय वृद्धाअवस्था में जितनी सादगी हो सकती है पोशाक में, वेशभूषा में उतनी सादगी पसंद करता हूं. लेकिन छुटपन से मुझे रूप और भाव का बहुत बड़ा भारी सम्बंध मिलता रहा है और मैंने अपने को ही सजाया है क्योंकि मेरे घर में अगर मेरी बीवी या कोई होता तो उसे सजाता तो वह कोई बात नहीं है. रूप का मैंने हमेशा आदर किया है. मुझे खुद अपना शरीर उसमें मिला मैंने उसी को सजाया. एक छोटी-सी रचना भी मैं आपको सुना दूं नवदृष्टि–

खुल गये छंद के बंद
प्रास के रजत पाश
अब गीत मुक्त
और युगवाणी बहती अयास
बन गये कलात्मक भाव
जगत के रूप नाम
जीवन संघर्ष देता सुख
लगता ललाम
सुंदर शिव सत्य कला के कल्पित मापमान
बन गये सूर जगजीवन से हो एक प्राण
मानव स्वभाव भी वन मानव आदर्श सुघर
करता अपूर्ण को पूर्ण और असुंदर को सुंदर

❑

वह आती है उड़ जाती है फुर्र

● प्रयाग शुक्ल

वह आती है. इधर उधर देखती है. इधर उधर डोलती है– चीं चीं चूं चूं बोलती है, और फिर उड़ जाती है, 'फुर्र'. फुर्र फुर्र फुर्र. न जाने कितनी बार उसे इसी तरह आते हुए, और फिर 'फुर्र' हो जाते देखा है. अपने घर के बरामदे में, किसी कमरे में. किसी खिड़की पर. कभी चेहरा उसकी ओर उठा है, कभी उसे ऊपर उठाये बिना, उसका आना, और फिर फुर्र हो जाना, 'देख' लिया है. इतना परिचित रहा है– उसका आना-जाना. उसे देखा है– किलों कंगूरों पर. देखा है, परित्यक्त महलों, खंडहरों पर. देखा है, शानदार होटलों में. किसी किसान की झोंपड़ी में. मंदिर. गुरुद्वारे में. किसी अन्य धार्मिक स्थल पर. उसे देखा है, स्टेशनों-प्लेटफ़ॉर्मों पर. बाज़ारों में. मेलों में. नाव पर भी. भला, उसे कहां नहीं देखा है. जाने-अनजाने उसकी प्रतीक्षा की है. किसी अतिथिगृह में ठहरा हूं, और उसकी बोली नहीं सुनी, तो वह सूना लगा है. पर, जब वह आ गयी है, बोली है, तो वह सूनापन भर गया है. वह आती है. मीठे बोल सुनाती है. कभी तिनके लेकर आती है. घोंसला बनाती है. आती है, तिनके लेकर, उड़ जाती है, फुर्र. एक बार भोपाल

वाले अपने घर में, जब बाहर कुर्सी डालकर बैठता था सर्दियों में, धूप खाने के लिए, कुछ लिखता-पढ़ता था तो उसे इसी तरह बार-बार आते देखा है– पड़ोसी के घर में वह घोंसला जो बना रही थी. बिजली के मीटर के पास. उसका आना 'डिस्टर्ब' नहीं करता था. भला लगता था. उसके आने के जो पल होते हैं, वे सदा गतिशील ही तो लगते हैं. उड़ान भरते हुए. आपको भी गतिशील बना देते हैं. अभी हम नोएडा में हैं. पर खबर मिली है कि स्वयं हमारे भोपाल वाले घर में, हरसिंगार के पेड़ पर बया चिड़िया घोंसला बना रही है. वीडियो पाकर प्रसन्न हो गया हूं. हां, गौरैया, बया और न जाने कितनी चिड़िया ऐसा ही तो करती हैं.

वह आती है अकेले. दुकेले. कभी तीन-चार की संख्या में. कभी झुंड में– गौरैया की तरह (जिसके कम होते जाने को हम बिसूरते रहे हैं.) चिड़िया भूरी है. काली है. कई रंगों वाली है. वह छोटी-सी चिड़िया है. चिड़िया है– आती है, उड़ती है, फुर्र हो जाती है.

विदेशों में भी उसे खूब देखा है– पाया है कि कई घरों में तो उसका स्वागत बाकायदा 'बर्ड हाउस' बनाकर किया जाता है, कि वह आये, 'बर्ड हाउस' के खुले दरवाजे से भीतर, कुछ खाये-पिये, आराम से बैठे, फिर जब मर्जी हो उड़ जाये, फिर आये...

ये 'बर्ड हाउस' बिकते भी हैं, लोग खुद अपने हाथों से बनाते भी हैं. एक से बढ़कर एक सुंदर. अब तो हमारे यहां भी बनने-बिकने लगे हैं– ये 'पक्षी घर', ये बर्ड हाउस. विभिन्न डिज़ाइनों के. चिड़िया आये पानी पिये. इसके लिए, न जाने कब से घर के बाहर, भीतर, एक जल-पात्र रखा जाता रहा है. दाना भी दिया जाता रहा है. उसके आने-जाने के गीत बने हैं. संगीतमय. गाये गये हैं. लोक में, नागर जीवन में. 'चूं चूं करती आयी चिड़िया, दाल का दाना लायी चिड़िया'. वह चिरैया है. सों चिरैया है. वह फुदकती है. नाचती है. हां, स्वयं नाचती-गाती है. और वैसा ही करने का भाव हमारे मन में भी भर जाती है.

उसने कहां घोंसला नहीं बनाया! कहां नहीं उड़ी भला. छोटे-बड़े पेड़ों की डालें यहां तक कि छोटे-बड़े पौधों की टहनियां भी, उसे प्रिय हैं. हरियाली उसे भाती है, और वह हरियाली को भाती है. वह दाने चुनकर खाती है, फल-फूल भी. वह खेतों पर भी उड़ती है. रेल की पटरियों पर भी. शहर की सड़कों पर भी. वह एक अचम्भा है– हमें कहां यह पता होता है कि वह कहां से कुछ खा-पीकर आयी है. या भूखी है, और अब कुछ खोज रही है. वह अपना दिन कहां-कहां, कैसे बिताती है– कहां होता है हमें यह पता! उसका होना एक राहत है. वह बच्चों को प्रिय है. बड़ों को

भी. उसकी अब तक दुनिया में लाखों-करोड़ों तस्वीरें खींची जा चुकी हैं. और अब तो मोबाइल पर उसकी तस्वीर ना जाने कितनी बार खींची और डिलीट की जाती है– पानी पीते हुए, किसी फूल के पास बैठे हुए, किसी साइकिल के हैंडिल या कार की छत पर 'विराजते' हुए. पर नहीं, वह 'विराजती' नहीं है, राजती है, ठीक उसी तरह, जैसे रश्मियां 'राजती' हैं– 'तरु शिखा पर थी अब राजती, कमलिनी-कुल वल्लभ की प्रभा'. हां, वह भी राजती है– तरु शिखा पर. और वह 'बाल विहंगिनि' तो है ही. 'कहां कहां हे बाल विहंगिनि पाया तूने यह गाना'. वह भी गृहस्थों/गृहस्थिनियों की तरफ बच्चों के पास जाने के लिए, चंचल हो उठती है– 'दिन जल्दी जल्दी ढलता है/यह ध्यान परों में चिड़िया के भरता कितनी चंचलता है!' उसके पास-चिड़िया के पास-पर भी हैं, पैर भी हैं. वह दोनों का इस्तेमाल करती है. सुंदर लगती है. और 'अज्ञेय' की वह छोटी-सी कविता– 'चिड़िया की कहानी', 1958 में दिल्ली में लिखी गयी : 'उड़ गयी चिड़िया/कांपी, फिर/थिर/हो गयी पत्ती'– जिसे बहुतों ने, कई प्रसंगों में, बहुत बार याद किया है. और 'अज्ञेय' ने ही लिखी है यह पंक्ति भी : 'फुनगी पर पूंछ उठाकर इतराती छोटी-सी चिड़िया'. हां, उसका इतराना कितना सुंदर, कितना मधुर, कितना मौन-मुखर है.

चिड़िया प्रतीक भी है, रूपक भी है, किस्सा भी है, कहानी भी है. वह भारतीय जीवन में ना जाने कब से घुली-मिली रही है. उसके बिना कोई जगह, जगह नहीं लगती है. कोविड-19 के दिनों में, मुक्त आकाश में, प्रदूषण रहित हवा में, वह फिर कुछ ज़्यादा दिखाई पड़ी है. वह छोटी है, बड़ी है, मंझोली है, मोटी है, दुबली है. बांग्ला में 'पाखी' है, हिंदी में भी. उसके कई नाम हैं. कई रूप हैं. वह है तो जीवन में एक रस है, बिना दाम दिये मिलने वाला जीवन-रस. वह है तो बस उसका होना ही काफी है. तो बने हमारा घर, उसके लिए एक 'पक्षी-घर' भी, जैसा कि सदैव रहा है.❑

ज़िंदगी का डिब्बा

जबतक कोई मुसाफिर डिब्बे के बाहर खड़ा अंदर आने की कोशिश करता रहता है, अंदर वाले मुसाफिर उसका विरोध करते रहते हैं, पर एक बार जब यह अंदर आ जाता है, विरोध खत्म हो जाता है. अगले स्टेशन पर वही सबसे पहले बाहर खड़े मुसाफिरों पर चिल्लाने लगता है– 'जगह नहीं है, अगले डिब्बे में जाओ... घुसे आते हैं!'

– भीष्म साहनी

संस्मरण

बॉक्सर, चिंआ और मिट्ठू

● रीता दास राम

बचपन की महीन खुशियां समय के साथ खत्म होकर भी भीतर के कोने में सांसें तलाशती हैं. बीता समय बतौर तोहफा स्मृतियां देकर जाता है. कई मासूम क्षण दिल पर दस्तक देते कभी विस्मृत नहीं हो पाते. फूलों के तोरण की तरह वे एक-दूसरे संग गुथे करीने से सुप्तावस्था में सुरक्षित समयावकाश के इंतज़ार में जी उठने का बहाना ढूंढ़ते हैं. बॉक्सर, चिंआ और मिट्ठू से जुड़ी स्मृतियां मेरी ऐसी स्मृतियां हैं जिसने जीवन से जुड़ना, संवेदनाओं को पिरोना, पराई पीर समझना सिखाया. जीवन में अपनापन बांटना, किसी को मन में जगह देना जैसे समय सहलाहट से अपने आप बोता जाता है. बॉक्सर, चिंआ और मिट्ठू के साथ गुजारे सात साल स्वर्णिम हैं. हम जीवन की सकारात्मकता व्यावहारिक तौर पर माता-पिता से सीख रहे होते हैं जो उनके व्यवहारों से प्रेषित होता है. कुछ बातें अब भी उस शहर में छूटी हैं...

ऑरेंज सिटी या संतरे की नगरी यानि महाराष्ट्र स्थित 'नागपुर'.

1975 के आसपास वैसे आज भी इस इलाके के घरों में कोई बदलाव नहीं हुआ है. नागपुर मोतीबाग रेल्वे कॉलोनी. कहीं-कहीं आंगन और बरामदे की अतिरिक्त बढ़ोत्तरी के साथ दो कमरों, रसोई, बाथरूम, आंगन के छोटे-छोटे अलग-अलग कई घर हैं. छतों पर और इमारतों के आसपास खेलते बच्चे, उनकी आवाज़ें, शोर का माहौल हमेशा बना रहता जब भी शाम को बच्चे खेला करते.

यहां अमूमन हल्की रफ़्तार से जीवन बढ़ता रहता. यह वह दौर था जब स्पर्धा की भावना सुगबुगा रही थी. मध्यमवर्ग कम महत्वाकांक्षी अपने चैन और तकलीफ़ों के साथ मस्त था. आस-पड़ोस एक दूसरे को करीब से पहचानते थे. दुख-सुख के समय पड़ोसी क्या होते हैं यहीं देखा और सीखा. चिड़िया, कौए, शाम को झुंड में मिट्ठू, कभी कभी कतार में उड़ते बगुले और आसमान में गोल चक्कर लगाती चीलें हमेशा ही दिखाई पड़ती.

ऐसी ही एक शाम सम्भवत: हमारी किस्मत से मिट्ठू का एक छोटा-सा बच्चा जिसने ठीक से उड़ना भी नहीं सीखा था, अपनी मां और समूह से बिछड़ कर भटक

गया. मौके की तलाश में घूमते कौए उसके पीछे पड़ गये. मिट्ठू का बच्चा शाम के हल्के होते अंधेरे में पीछा करते कौए के डर से इधर उधर उड़ता बिल्डिंगों से टकराता बचाव की तलाश में हमारे कमरे की खिड़की से अंदर घुस आया. पीछा करते कौए ने उस पर छपट्टा मारा. पर खिड़की के सलाखों के बीच से भीतर घुस आये मिट्ठू के बच्चे को पकड़ न पाया. घबराया हुआ मिट्ठू का बच्चा अजीब माहौल में बौखलाकर इधर उधर देखने लगा. भागता क्या न करता उसने खिड़की के बाहर जाना ही ठीक समझा. बाहर कौए घात लगाये बैठे थे. फिर भी उसने उड़कर बाहर भागने की कोशिश की. चूंकि अभी वह पूरी तरह उड़ने में पारंगत नहीं हुआ था और बाहर गहराते अंधियारे ने कोई दिशा नहीं बख्शी.

स्थिति समझते ही मम्मी ने तौलिए से मिट्ठू के बच्चे को बहुत नरमाई से आहिस्ते से पकड़ लिया. चिल्लाना, छटपटाना सारी कोशिशों के बाद उसने मम्मी के हाथों में शांति से बैठ जाने में भलाई समझी. हम सभी भाई-बहन चमत्कृत उस नन्ही-सी जान को देखते रह गये. जल्दी से खिड़की दरवाजे बंद किये गये. मम्मी के हाथ से छूटते ही सारे घर में उड़-उड़ कर इधर-उधर बैठने लगा. प्रश्न सामने था कि रात उसे रखें कहां ताकि वह आराम से सुरक्षित रहे. उसे छोड़ना उसकी अपनी ज़िंदगी को खतरे में डालना था. आखिरकार पापा ने वक्त की नजाकत देखते हुए तुरंत शनिचरी बाजार से पिंजड़ा ले आना ही उचित समझा. इस तरह एक बहुत छोटे सदस्य का घर में आगमन हुआ. दो दिन तक मिट्ठू के बच्चू ने कुछ नहीं खाया.

दिन बीतने लगे. वह अभ्यस्त हुआ. धीरे-धीरे उसने खाना शुरू किया. उसकी दो लम्बी बड़ी पूंछ जो पिंजरे के बहुत बाहर तक निकल आती. जिससे उसे घूमने पलटने ऊपर-नीचे चढ़ने और उतरने में बहुत परेशानी होती और वह ठीक से खा-पी नहीं पाता न ही घूम पाता. आखिरकार उसकी सुविधा के लिए उसकी लम्बी पूंछ को काटना पड़ा. धीरे धीरे गले के पंख लाल और काले रंग में बदल गये. गले में लाल-काला घेरा बन गया. चोंच सुर्ख लाल हो गयी. हम भाई बहन खेल-कूद में मशगूल रहते और वह पिंजड़े को चोंच और पंजों से पकड़ते ऊपर नीचे घूमता जाता. हम पांचों के द्वारा हमेशा 'मम्मी' शब्द पुकारे जाने ने उसे मम्मी बोलना सिखा दिया. इसके अलावा सभी उसे मिट्ठू ही कहते तो अपना नाम भी अक्सर बोला करता. सब्जी वाला आये या कोई दरवाज़ा खटखटाए वह ज़ोर-ज़ोर से मम्मी-मम्मी मिट्ठू-मिट्ठू की रट लगाये रखता. किसी को कोई तकलीफ न देता यह छोटा-सा घर का सदस्य सभी को बहुत भाता.

खाने के लिए मिट्ठू को हम जिससे

जो सुनते उसके लिए ले आते. वह अपनी पसंद से खाता और कुछ पड़े पड़े सूखने देता. मिर्ची वह बड़े कलात्मक रूप से खाता. मिर्ची की डंडी को एक पैर जिसे हम हाथ कहते, से पकड़कर गोल घुमाते हुए चोंच से खाता और मिर्ची को पूरे ऊपरी कवर और डंडी सहित फेंक देता. हम बच्चे नाराज होते कि हमारी दी हुई मिर्ची नहीं खायी. ध्यान से देखने पर पता चलता कि मिर्ची को टुकड़े में विभाजित किये बगैर मिर्ची के कवर पर एक गोलाकार तिरछा कट लगाते हुए मिट्ठू ने उसके अंदर के पूरे बीज खा लिये. जबकि मिर्ची पूरी साबुत ही नज़र आती. खाना मिलने में देरी हो या कभी भूल जाए तो नाराजगी दिखाने के लिए मिट्ठू-मिट्ठू की रट लगाता पिंजड़े में गोल गोल चक्कर मारता और सबका ध्यान आकर्षित करने के लिए पानी की कटोरी को चोंच से पकड़ कर उलट देता. ऊंचाई पर लटके पिजड़े से गिरते पानी से सबकी निगाहें उस पर पड़ती और उसे खाना मिल जाता.

हम कभी कभी अपने बीच उसे घर पर खुला छोड़ते. ताकि पिंजरे में बंद होने के एहसास से वह थोड़ी देर के लिए ही सही मुक्ति पा सके. दरवाजे खिड़कियां बंद कर उसे घर में खुला छोड़ दिया जाता. हमने देखा वह उड़ नहीं पाता.

मिट्ठू पिंजड़े में सुरक्षित महसूस करता. बरामदे के जालीनुमा सिमेंट की दीवार से दिखाई देते चिड़िया और कौए को देख वह अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त किया करता. चिड़िया उसकी साथी थी. उसके पिजड़े में पड़े दाने आकर खाती और वह शांत देखता रहता. ढेर सारी चिड़ियों की चीं-चीं और मिट्ठू की मिट्ठू-मिट्ठू मम्मी-मम्मी की आवाज़ और ज़ोर-ज़ोर से सीटी बजाना, कभी कभी हमें घर में पक्षियों के घर का एहसास कराता. अभी और सदस्यों का भविष्य में आगमन होना बाकी है यह सच्चाई परत-दर-परत खुलती सामने आती रही.

हम चार बहनें और एक भाई माता-पिता सपरिवार इमारत के निचले क्वाटर में रहते थे. दूसरी कक्षा की छात्रा मैं जालीनुमा बरामदे से मां के हाथों सिर में तेल लगवाती हुई बाहर देख रही थी. सब्जी वाले के आस-पास बकरी, गाय और लावारिस कुत्तों का आना-जाना लगा रहता जिन्हें वह बारी बारी से भगाता, आगे बढ़ जाता. लावारिस कुत्तों में कुत्ते के बच्चे भी होते जो हम भाई-बहनों को आकर्षित करते.

छठी कक्षा में पढ़ती मंझली दीदी कई दिनों से मां को मनाने में लगी थी कि घर में एक कुत्ते का बच्चा लाने की इज़ाज़त मिल जाए. मां हर बार मना कर देती. कारण.... घर भर में घूमेगा. गंदा करेगा. सफाई कौन करेगा!! ... बस बात खारिज हो जाती. इस बार दीदी ज़ोर दे रही क्योंकि एक दिन पहले ही उसके स्कूल के पास

एक ईसाई परिवार में ऑल्सेशियन प्रजाति के बच्चे पैदा हुए और कुत्ते के मालिक का विचार यह कि जैसे भी हो बच्चे कोई न कोई ले जाए. सो दीदी मां की इजाजत के लिए मां को मना रही थी ताकि एक बच्चे को घर लाया जा सके और हम बच्चों की बड़े दिनों से चली आ रही आस पूरी हो. सारी कथा सुन और ऑल्सेशियन प्रजाति की जानकारी से संतुष्ट मम्मी का मन भी भीग गया. रंग पूछने लगी. हुलिया. कहां से लाना होगा ... और भी बहुत कुछ. आखिरकार सहमति मिल गयी.

परीक्षा का आखिरी दिन. पेपर खत्म होने की घंटी बजी. मंझली दीदी कुत्ते के बच्चे को देखने गयी. कुत्ते के सारे बच्चे किसी न किसी के द्वारा ले जाए जा चुके थे. दीदी के पसंदीदा रंग का बच्चा भी जा चुका था. एक ही बचा था. आसपड़ोस से पूछने पर पता चला वह भी कुछ दिनों से कहीं खो चुका था. जब मिला तो बुरी हालत में है. मालिक ने कुत्ते को बच्चे सहित घर से बाहर कर रखा था. बच्चा अच्छी अवस्था में नहीं था. मालिक ताला बंद कर कहीं बाहर गया हुआ था. बच्चे को लेने में पूछताछ जैसी कोई परेशानी नहीं थी.

कुत्ते के बच्चे के शरीर पर ढेर सारी जूएं चल रही थीं. उस कुत्ते की मां भी दूर खड़ी देख रही थी. बच्चा दर्द से बीच बीच में चिल्ला उठता. दीदी को दया भी आयी और भय भी हुआ. दीदी पशोपेश में कि कैसे ले जाए. इन जुओं के कारण मम्मी कुत्ते के बच्चे लेने से एकदम मना न कर दे. खैर, दीदी ने हिम्मत की. अपने रुमाल के बीच में बच्चे को रखा. रुमाल के चारों कोनों को पकड़कर ऐसे पकड़ लिया कि उसका मुंह बाहर ही रहे. घर पहुंचने के बीस मिनिट समय को दौड़ते हुए कम किया. इस बीच कई बार उसे वह ज़मीन पर रख देती क्योंकि उसके शरीर की जूएं रुमाल से होते हुए दीदी के हाथ में चढ़ने लगती जिन्हें झाड़ना, गिराना और फिर उठाकर दौड़ जाना, ज़रूरी था.

दीदी कुत्ते के बेहद छोटे बच्चे के साथ जो कि जूंओं से भरा था, घर पहुंची. उसे बाहर ही सीढ़ियों के पास रख दिया गया. सभी भाई-बहनों को जानकारी मिली. मम्मी जी को भी बताया गया. मम्मी ने दीदी को प्रश्न चिह्न निगाहों से देखा पर डांटा नहीं. पापा को करीने से बात बतायी गयी. जिज्ञासा ने पापा को बाहर आने पर मजबूर किया. तब तक कुत्ते के बच्चे के शरीर की जूं दीवारों पर चढ़ने लगीं. यह देख सब घबराये. कुत्ते का बच्चा धीरे-धीरे बेदम होता जा रहा था.

पापा ने मम्मी को पानी गरम करने को कहा. तब तक दीवारों पर चढ़ते कीड़ों को निकाले जाने का काम पापा कर रहे थे और हम सभी भाई बहन दम साधे देख रहे थे. यह काम घर के बाहरी हिस्से में हो रहा था. गरम पानी में डेटोल डालकर

साबुन से पापा ने उसे नहलाया. उसकी काऊं-काऊं की आवाज़ गूंजती रही. पता चला गले के नीचे, कांख और जांघों के बीच जूंओं ने जख्म कर दिया है. नहलाने के बाद पापा ने उसके कान, आंख, नाक मुंह आगे पीछे, उलट-पुलट कर देखा कि कहीं और कोई जख्म तो नहीं. तसल्ली कर अच्छी तरह नहलाकर उसे पोंछा गया. फिर भी एक आध कीड़े दिखाई पड़ जाते थे. उसके पांचों जख्मों में डेटोल लगाकर रुई से कोई दवाई लगाई गयी. कीड़े जाते रहे.

बच्चा कूं-कूं की आवाज़ करता एक दो कदम आगे पीछे चलता और बैठ जाता. मम्मी ने छोटी सी प्लेट में उसे दूध दिया. पर वह न दूध को देखता न पीता. आखिरकार रुई को दूध में भिगाकर मुंह को ऊंचा कर उसमें निचोड़ा गया ताकि आसानी से दूध कंठ में पहुंच जाए. दो टेबल-स्पून दूध बच्चे के मुंह में निचोड़े जाने के बाद उसने आंखें बंद कर लीं. शाम चार से रात कब हुई पता ही नहीं चला. बोरे और पुराने कपड़े से बने उसके बिस्तर पर उसे सुला दिया गया. बीच बीच में दर्द से कराहने के बावजूद सुकून पाने की आवाज़ आती रही. हम बच्चों से लेकर मम्मी पापा ने भी रात में दो तीन बार उसे उठकर देखा कि वह कैसा है. महाशय सोते पाये गये. पापा का कहना था एक दिन भी और लेट हो जाता तो यह बच्चा न बचता. दूसरे दिन भी उसे रुई से दूध पिलाना पड़ा. लेकिन हाथ पैरों में जान आने लगी. तीसरे दिन बॉक्सर ने खुद दूध पीया और पानी भी.

जल्द ही उसके जख्म सूख गये और हमें बॉक्सर के साथ खेलने की इजाज़त मिल गयी. रोज सुबह शाम उसे घूमने ले जाने से उसे पॉटी और सू-सू बाहर करने की आदत पड़ गयी.

हम बच्चों के लिए जैसे वह एक चलता फिरता खिलौना था. भैया और दीदी द्वारा कई नामों के बहुत बहस के बाद उसका नामकरण हुआ. हफ्ते भर में बॉक्सर की आंखों ने हम बच्चों को देखना और मम्मी को उनकी साड़ी से पहचानना शुरू किया. ज़मीन पर रखे मिट्ठू के पिजड़े के पास वह सूंघते हुए जाता. मिट्ठू द्वारा नाक पर चोंच के छोटे प्रहार से सहमकर पीछे हटता हुआ ज़मीन पर बैठ जाता. मिट्ठू और बॉक्सर एक दूसरे को देखते परखते. घर में बड़े होने की अपनी भूमिका में मिट्ठू ज़ोर-.जोर से आवाज़ करता जैसे कि उसे कुछ बता रहा हो जबकि बॉक्सर कुछ न

मम्मी ने छोटी सी प्लेट में उसे दूध दिया. पर वह न दूध को देखता न पीता. आखिरकार रुई को दूध में भिगाकर मुंह को ऊंचा कर उसमें निचोड़ा गया ताकि आसानी से दूध कंठ में पहुंच जाए.

समझता. एक ही जगह पर गोल-गोल घूमता अपनी जगह बनाता बैठ जाता.

हम बच्चे बॉक्सर को शेक-हेंड करना सिखाते. वह हमें अपना कभी दायां तो कभी बायां हाथ देता. हम उसके दाएं हाथ आगे बढ़ाने पर खुश होते और वह अपनी समझ सुनिश्चित करता हमारे साथ खेलने लगता. हम पांचों के लिए वह एक खिलौना कम साथी ज़्यादा था. जिसकी उपस्थिति हर खेल में होती थी. फिर वो उसे समझे या ना समझे. कैरम खेलते समय गोटी के साथ उसकी नज़रों का इधर से उधर घूमना और काफी इंतज़ार के बाद अचानक से कैरम बोर्ड के मध्य में अचानक कूद कर खेल का सत्यानाश करना. उस पर हमारे चिल्लाते ही भागकर छिप जाना. क़्वीन गोटी को मुंह में लेकर देर तक आहिस्ते आहिस्ते चबा कर गीला कर देना. फर्श पर पड़े स्ट्राइकर को घंटों मुंह से पकड़ने की नाकाम कोशिश करते रहना. स्ट्राइकर का फिसलना उसे अक्सर चैलेंज सा लगता. लूडो खेलते समय पासे को फेंकना मुश्किल हो जाता क्योंकि हर बार बॉक्सर कूदकर पकड़ लेता और मुंह में दबाये रखता. लूडो बोर्ड पर गोटी को सरकाने के पहले पंजे रख देता. रोकता. बॉक्सर घर का छोटा सदस्य हो गया. मेरी कलाई अपने जबड़े के भीतरी अंत तक धर लेने के बावजूद वह काटता नहीं बल्कि चुभला कर छोड़ देता. मम्मी को उनकी साड़ी से पहचानता. नीचे साड़ी और फॉल से गुत्थम-गुत्था होते लड़ियाना उसका पसंदीदा काम था. कभी साड़ी दांतों से पकड़कर खींचता कभी उसमें रोल हो जाता. मम्मी की कई साड़ी उसने नीचे से फाड़ी.

धीरे-धीरे पड़ोसियों के बच्चों को भी पहचानने लगा. सबके साथ खेलता. हमारे आगे पीछे बिना कारण के दौड़ना भी उसका खेल था. दरवाज़े की सांकल बजने पर बहुत ज़ोर-ज़ोर से भौंकता. सब्जी वाले की आवाज़ में एक या दो बार भौंक कर मम्मी को चेताता.

बॉक्सर बड़ा होने लगा. अपनी कटे पूंछ के साथ काले रंग में पेट की ओर कत्थई और दोनों आंख के ठीक ऊपर कत्थई-पीली अंडाकार बिंदियों से वह चौकन्ना प्रभावशाली दिखाई पड़ता. दो बिंदियां कभी कभी उसके आंख होने का का भ्रम पैदा करती. उसका भौंकना हमें अच्छा लगता. वह दरवाजे के बाहर सीढ़ी पर बैठा रहता. उसकी उपस्थिति बाहरी लोगों को आतंकित रखती. जबकि उसने कभी किसी को नहीं काटा. लम्बे बरामदे में हम बच्चे एक ओर फर्श पर टेल्कम पाउडर डाल चिकना कर देते. दूसरी ओर से दौड़ते हुए आते और पाउडर लगे फर्श पर फिसलते जाते. हमारे साथ बॉक्सर भी होता. हम साथ साथ फिसलते. इस तरह बच्चों के बीच उसकी बराबर जगह बनी होती. दिवाली में पटाखों की आवाज से डरता. होली में उसे भी

रंगीन करने में हमें मज़ा आता. हम उसके साथ खेलते बड़े हो रहे थे. दो साल कैसे गुजर गए पता नहीं चला.

एक दिन वह भी आया जिसका अक्सर डर बना रहता. म्यूनसिपलटी की लावारिस कुत्ता पकड़ने वाली गाड़ी आती जो कुत्तों को ले जाती. हम बॉक्सर को बचाते. उसे बाहर जाने नहीं देते. पालतू होने की निशानी पट्टा उसके गले में हमेशा बांधे रखते. पर होनी को कुछ और मंजूर था. हम बच्चे स्कूल गये थे. म्यूनसिपलटी की कुत्ते पकड़ने वाली गाड़ी आयी. इस बार हमने सुना, उन्होंने कुत्तों को ज़हर दे दिया. समय को हमारे साथ ही क्रूर होना था. बॉक्सर ज़हर खा चुका था. घर के बाहर जहाँ सिगड़ी जलाई जाती वहीं आकर वह गिर पड़ा. मुंह से फेन. आंखें पथराने लगीं. कांपती देह. वह छटपटाने लगा. मम्मी ने उसे पानी पिलाया. पड़े-पड़े देर तक वह देखता रहा. घंटे भर में ही जान चली गयी. हम बच्चों के स्कूल से घर आने से पहले उसे लोग उठाकर ले गये. घर में एक छटपटाने वाली उदासी छा गयी. जिसने सभी को भीतर ही भीतर खामोश कर दिया. उसका पट्टा, बिस्तर, खाने का बर्तन, पानी का बर्तन सब घर में वैसे ही रखे रहते.

इस बीच पापा को नया घर एलॉट हुआ. हम नये घर में चले गये. जिसमें पिछवाड़े बड़ा सा आंगन था. नीम और नींबू के पेड़ पहले से ही मौजूद थे. गुलाब, मोगरा, तुरई की बेल, कई बोई यादें हैं सजीव. हमने फिर दूसरा कुत्ता पाला. शायद बॉक्सर की याद मिटाना ज़रूरी था. इस नये का नाम भी बॉक्सर रखा गया.

रोटी, चावल जो भी दो, वह खा लेता. मांसाहारी भोजन के दिन मांस के छोटे टुकड़ों और हड्डी के साथ उसे चावल पकाकर दिया जाता, जिसका वह बहुत मनोयोग से इंतज़ार करता. आंगन के बीच ही नहाने के लिए पानी गरम करने तीन ईंटों का चूल्हा जलाया जाता था. उसी चूल्हे में उसका खाना पकता और वह उसके पास बैठकर देखता रहता. देर हुई तो बीच बीच में कुं-कुं की आवाज़ करता पर तब तक नहीं हटता जब तक की खाना नहीं मिल जाय. रोज के शाकाहारी खाने में उसकी भूख की हद तक सीमित इच्छा दिखाई देती.

हमारे सामने खुले आसमान के नीचे आंगन में मिट्ठू और बॉक्सर खुले घूमते. बॉक्सर की हरकतों पर हमारी निगाहें होतीं. हमें खुशी है हम बॉक्सर को व्यावहारिक रूप से समझा पाये कि मिट्ठू घर का एक सदस्य है. जब हम न होते मिट्ठू पिंजड़े में बंद रहता. कौए अक्सर मिट्ठू को तंग किया करते. बॉक्सर हमेशा चौकन्ना रहता. जैसे ही कोई कौआ आंगन के चारों ओर बनी ऊंची दीवार पर बैठता बॉक्सर छलांग लगा भौंक कर तुरंत भगा देता. पर दस फूट

दीवार की ऊंचाई नाप नहीं पाता. हम जब शहर में ही कहीं बाहर जाते बॉक्सर और मिट्ठू आंगन में मजे से रहते. बॉक्सर के रहते कोई मिट्ठू को छू भी नहीं पाता.

जानवर और पक्षी मनुष्य की बोली नहीं जानते पर स्वाभाविक रूप से सब समझते हैं यह हमें दिखाई पड़ता. कभी जब पापा हम बच्चों को किसी बात के लिए डांटते. बॉक्सर और मिट्ठू एकदम खामोश हो जाते. खाने का समय होने पर भी कोई आवाज़ नहीं करता. जैसे उदासी पढ़ना दोनों जानते हों. और खुशी का माहौल हो तो मिट्ठू आवाज़ें निकाल कर अपनी प्रसन्नता जाहिर करता. बॉक्सर घर के हर सदस्य के पास जाकर चेहरा पढ़ने की कोशिश करता और कुं-कुं की आवाज़ करता जैसे पूछ रहा हो कि बात क्या है. हंसते-खेलते हम साथ पल-बढ़ रहे थे कि अचानक एक दिन एक नये मेहमान का आगमन हुआ.

बड़ी दीदी ने स्कूल से लौटते समय भरी दोपहर में बड़ी-सी टोकरी में मुर्गी के ढेर सारे बच्चे बिकते देखे. एक बच्चा महज पचास पैसे में. दीदी के पास एक रुपया ही था. मम्मी पापा से पूछने की परवाह किये बगैर दीदी ने दो बच्चे खरीद लिये. अपने ऊंचे से टिफिन बॉक्स में रख कर उन्हें गर्मी से बचाती घर ले आयी. सभी को दिखाने के लिए दोनों बच्चों को एक स्टूल पर रखा. थोड़ी देर में दोनों बच्चे चीं-चीं करते इधर-उधर होने लगे. हमारी नज़रों की चूक ही हुई कि एक बच्चा स्टूल से छाती के बल ज़मीन पर गिर पड़ा. घंटे भर में मौत. जैसे दर्द की सिहरन थी. दूसरे को बचाने हम सभी हर पल हर दिन चौकन्ने हुए. अब एक ही था. सबकी आंखों का तारा जिसे बॉक्सर से बचाना सबसे ज़रूरी काम हुआ. हफ्ते भर में सारे घर में हुड़दंग. नाम रखा गया चिंआ. पकड़ने जाओ तो बहुत भगाता. सोफा, अलमारी, टेबल पलंग कभी नीचे तो कभी ऊपर. आंगन में बॉक्सर का राज. बॉक्सर के लिए चिंआ का भागना जैसे चैलेंज था. बॉक्सर झपटा मारता और वह उड़ कर दूसरी ओर. हमने घर के अंदर ही चिंआ को रखने में भलाई समझी.

हम पांचों भाई बहनों की जान चिंआ बड़ा होने लगा. इतने ज़ोर से भागता कि किस ओर जाएगा यह अंदाज़ा लगाना मुश्किल हो जाता और इसी गफलत में एक दिन वह दीदी के पैर के नीचे आ गया. उठाये. पता चला एक पैर से लंगड़ाने लगा. बाम लगा कर चिंआ के पैर की मालिश और सिकाई की गयी. ठीक हुआ. चलने लगा किंतु एक पैर के पंजे टेड़े ही रहे.

आंगन में कभी कभी हम बॉक्सर, चिंआ और मिट्ठू तीनों को एक साथ छोड़ा करते. बॉक्सर को शांत रहने के लिए अक्सर डांटा जाता. उसके कुछ न कर पाने की उसकी हरकत हमें हंसाती. वह चुपचाप मुंह ज़मीन में टिका कर पसर कर बैठ

जाता. मिट्ठू के धीरे-धीरे पास आने पर बॉक्सर उसे एक पंजा देने की कोशिश करता जैसे शैक हैंड कर रहा हो. उसका एक पंजा भी मिट्ठू के लिए खतरनाक साबित होगा यह जानते हम उसे मना करते और वह चुप बैठने में ही भलाई समझता. मिट्ठू उसकी नाक पर आंख और नाक के बीच बैठता और चिंआ उसकी पीठ पर. बॉक्सर थोड़ा-सा भी हिले तो दोनों गुर्राते. चिंआ तो जैसे उड़ जाने की धमकी देता पंख फड़फड़ाने लगता. डगमगाने की स्थिति में मिट्ठू नाक में चोंच मारता पंजों को कस देता. बेचारा बॉक्सर कुं-कुं करता फिर बैठ जाया. इसी बीच अगर कौआ आ जाए तो किसी की नहीं चलती. दोनों इधर-उधर होते एक ओर गिरते-पड़ते-उड़ते-खड़े होते और बॉक्सर कौए के पीछे छलांग मार चुका होता.

इस बीच एक हादसा गुजरा. गर्मी के दिन थे. कुत्तों के काटने की खबरें सुनाई पड़ रही थी. शाम आंगन में मेरे पास बैठे बॉक्सर को मम्मी ने खाना दिया. वह खाने लगा. मम्मी ने उसके पास से हट जाने की सलाह दी. मैं हटने के लिए उठ खड़ी हुई और मैंने बॉक्सर का विकराल रूप देखा. बॉक्सर ने पंजे मेरे पेट में रख छाती के बीच में दांत गड़ा दिये. मम्मी तुरंत भागी आयी. बॉक्सर मुझे छोड़कर दूर चला गया. मुझे पेट में तीन इंजेक्शन लगवाने पड़े. साथ ही डॉक्टर की हिदायत कि कुत्ते पर नज़र रखिए. जिस तरह कुत्ते का ज़हर इंसान पर चढ़ता है उसी तरह कुत्तों पर भी इंसानों का प्रभाव पड़ता है. अगर कुत्ता मर जाता है तो 15 इंजेक्शन और लगवाने पड़ेंगे. खैर बॉक्सर को कुछ नहीं हुआ और मैं इंजेक्शनों से बच गयी. मम्मी को यह बात चुभ गयी. जैसे ममता जख्मी हो गयी थी.

बॉक्सर पापा की स्कूटर के आगे आगे दौड़ता हुआ घर तक आया. जबकि जाते समय दीदी अपने साथ बिठाकर ले गयी थी. घर में स्कूटर पांच मिनट बाद आयी. बॉक्सर पांच मिनिट पहले पहुंचा था.

मेरे अच्छे हो जाने के बाद मम्मी ने बॉक्सर को घर से निकाल देने की बात सबके सामने कही. बॉक्सर का जाना हम सभी के लिए तकलीफदेह है सभी जानते थे. बहस के बाद फिर किसी ने कुछ नहीं कहा. दो दिन बाद पापा और दीदी ने बॉक्सर को शहर के बाहर खेत और गांव जैसे जगह में जहां आसपास उसे खाने की तकलीफ ना हो ऐसी जगह में एक पेड़ से बांध कर छोड़ दिया. बांधे भी एक ऐसी रस्सी से थे जो उसके दो झटके में टूट जाए ताकि उनके जा चुकने के बाद कम से कम वह आज़ादी से घूम सके. छोड़ने के बाद दो दिनों तक मैं रात में मम्मी की छटपटाहट महसूस करती रही क्योंकि भाई-बहनों में छोटी होने

की वजह से मैं मम्मी के पास सोया करती थी. तीसरे दिन मम्मी ने रोकर पापा से बॉक्सर को वापस लाने की बात कही. दो दिनों से बराबर सपने में वे बॉक्सर को देखती रही थीं.

पापा और दीदी वापस उसी जगह तीसरे दिन पहुंचे. रस्सी टूटी पेड़ में ही बंधी दिखाई दी. बॉक्सर का कोई पता नहीं था. दीदी रोने लगी. पापा ने धीरज दिया. आसपास के छोटे दुकानों में और घरों में पूछा. कुछ लोगों ने देखा था. पर अब कहां होगा इसकी कोई जानकारी नहीं थी. बहुत आगे तक खेत ही खेत थे. दीदी और पापा स्कूटर से खेत के अंदर दूर तक गये पर कोई नज़र नहीं आया. पापा ने दीदी को घर वापस चलने के लिए कहा. दीदी से रहा नहीं गया. उसने चारों दिशाओं में मुंह करके बॉक्सर-बॉक्सर ज़ोरों की कई बार आवाज़ें लगायीं. कहीं कोई आवाज़ वापस नहीं मिली. वापसी के लिए वें मुड़े ही थे कि कमर तक उग आये खेतों के पौधों के बीच से हलचल बनाती एक रेखा उनकी ओर ही बढ़ी आ रही थी. जैसे ही करीब आकर वह खत्म हुई बॉक्सर सामने था. दीदी और पापा की खुशी का ठिकाना नहीं था. जबकि वे मम्मी को कह आये थे कि तीन दिन बाद बॉक्सर का मिलना असम्भव है. पर कोशिश तो की ही जा सकती है. बॉक्सर कभी दौड़ कर सामने जाता कभी दौड़कर पीछे लेकिन पापा और दीदी के हाथ नहीं आता. आखिर पापा ने स्कूटर शुरू की और दीदी को बिठाकर निकल पड़े.

बॉक्सर पापा की स्कूटर के आगे आगे दौड़ता हुआ घर तक आया. जबकि जाते समय दीदी अपने साथ बिठाकर ले गयी थी. घर में स्कूटर पांच मिनट बाद आयी. बॉक्सर पांच मिनिट पहले पहुंच चुका था. आते ही सबको छूना. कभी घर के अंदर. कभी बाहर. मम्मी के चारों ओर गोल-गोल घूमना. भौंकना. कुं-कुं की आवाज़ें निकालना. ज़ोरों से हांफ रहा था. आखिर दोनों टांगें ऊपर कर मम्मी के हाथ चाटने लगा. मम्मी ने पुचकारा. वह विह्वल हो उठा. साड़ी पकड़ कर खींचना. आखिरकार साड़ी को भाववश खींचने लगा. मम्मी ने उसे उठाकर गोद में ले लिया. बहुत लाड़ किया तब जाकर बॉक्सर शांत हुआ. हम सबने बारी बारी से उसे लाड़ करके आश्वस्त किया.

दिन गुजरते रहे. चिंआ अच्छा ऊंचा हो गया. सफ़ेद रंग उसे और शालीन बनाता था. इस बीच आपसी बातचीत में पड़ोस की आंटी ने चिंआ के एक-डेढ़ किलो का हो चुकने पर उसे पकाकर खाने की सलाह मम्मी को दी जो हमने सुन ली. घर में हम बच्चों ने बगावत कर दी. चिंआ को कोई कुछ नहीं करेगा. बल्कि उसके अकेलेपन को दूर करने के बारे में सोचा गया. पापा एक काला-पीला हरी पूंछ वाला मुर्गा और

दो मुर्गियां एक सफ़ेद और दूसरी कत्थई रंग की खरीद लाये. चिंआ के परिवार में वृद्धि हुई. आंगन के बायें कोने में लकड़ी का दड़बा बनाया गया. सभी को रात में उसमें बंद किया जाता. दिन में सबकी मौज-मस्ती चालू रहती. चिंआ सफ़ेद था पर वह कत्थई रंग की मुर्गी के साथ ही खेला करता. दूसरी मुर्गी के करीब आते ही चोंच मार कर भगा देता. दोनों मुर्गा मुर्गी जोड़ी से घूमा करते. चिंआ अपने दोस्तों के साथ पूरे आंगन में घूमता. तब बॉक्सर को बांधना पड़ता. जब बॉक्सर खुला रहे तो वे सभी दड़बे में रहते. मुर्गियां अंडे देने लगीं. सभी मिलजुल कर रह रहे थे.

अचानक हमने कुछ आगे की यानि मुर्गी के बच्चों की सोची. सभी अंडे जमा किये. घर के अंदर एक टोकरी में पहले से घास-फूस बिछाकर उस पर अंडे रख मुर्गी को अंदर आने दिया. जमा अंडे देख मुर्गी अपने आप आकर उस पर बैठ गयी. यह आश्चर्यजनक था. मुर्गी बिना खाना खाये. हफ्ते भर बैठी रही. मम्मी ने उसके टोकरी के पास दाने और पानी रख छोड़ा था. पर वह कब उठती कभी पता नहीं चलता. एक बार हमने 14 दिन बाद उसे एक अंडे को अपनी चोंच से पकड़कर टोकरी के बाहर लाते और दूर ले जाकर रखते देखा. वह अंडा खराब हो चुका था. उसने अच्छे अंडों से उसे अलग कर दिया. यह अनुभव बहुत अनोखा और अद्भुत था.

चिंआ परेशान रहता. वह बार बार आता. बैठी हुई मुर्गी को देखता. कॉक-कॉक की निरंतर आवाज़ के साथ पास जाकर देखता. वापस आ जाता. पहले दो दिन तक रात में कई बार दड़बे से उसकी आवाज़ें आतीं. फिर धीरे-धीरे उसने परिस्थिति से समझौता कर लिया. 21 दिन बाद... एक... फिर दूसरा... फिर तीसरे बच्चे की चीं-चीं से घर गूंजने लगा. हम बच्चों की खुशी का ठिकाना नहीं रहा. दो-तीन दिन मम्मी ने मुर्गी और बच्चों को बाहर आंगन में जाने नहीं दिया. जिस दिन अपने तीन बच्चों को लेकर मुर्गी की सवारी आंगन में निकली मिट्ठू, बॉक्सर, चिंआ और मुर्गा-मुर्गी सभी के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा. चिंआ, मुर्गी और बच्चों के कभी आगे तो कभी उनके पीछे घूमते हुए अपनी खुशी जाहिर कर रहा था. मुर्गी के बच्चों ने पूरे आंगन में आज़ादी का मज़ा लिया. सभी का आश्चर्यचकित होना माहौल को अद्भुत बना रहा था.

अब हम बॉक्सर को खुला नहीं छोड़ पाते. बंधे होने के बावजूद वह कौए को उतनी ही तत्परता से भगाता. सभी उसके रहते सुरक्षित महसूस करते.

बहुत उल्लास में बीत रहा था सब कुछ. हर दिन बढ़ते मुर्गी के तीनों बच्चों में हम अंदाज़ा लगाते कौन-सी मुर्गी होगी कौन-सा बच्चा मुर्गा. दड़बा छोटा पड़ने लगा. दिन भर पूरे आंगन मुर्गा–मुर्गी घूमते. दाना

खाते. पानी पीते. पेड़ के नीचे मिट्टी हटाकर अपने बैठने के लिए जगह बनाते. मिट्ठू नींबू के पेड़ की डाली से लटके अपने पिंजड़े में सुरक्षित बतियाता रहता. नीम की छांव में सभी ठंडी हवा में बैठते, चरते, सुस्ताते, सोते, बेफिक्र थे.

वह दिन भी आया जब हमें पता चला हर खुशी का अंत भी होता है. नानाजी की खराब सेहत की सूचना मिली. हमें मिट्ठू और मुर्गी-मुर्गों को पड़ोसियों की देख-रेख में छोड़कर जाना पड़ा. बॉक्सर साथ था. नानाजी चल बसे थे. कुछ दिनों बाद वापसी में पता चला. हमारे ना रहते रात दड़बे से सारे मुर्गी-मुर्गों को कोई ले गया. आने पर हमने देखा. दाना-पानी भरा रखा था. पर वे न थे.

हम दुखी हुए. रोये. रोकर चुप हो गये. दड़बे के एकांत को सुनते. सुनने की कोशिश करते. कोई कैसे ले गया? किस तरह उठाया होगा? इतनों को एक साथ? पापा कहते थे चिंआ ही अकेला चार किलो का है.... फिर !! कई रातें गुजरती रही. बहसों में. चर्चाओं में. समय बीता. मिट्ठू पहली बारिश में भीगकर अपने पिंजरे में मरा पाया गया. हमारे साथ गुजारे उसके सात साल खामोशी से स्मृतियों में गुजरते रहे. इस साल कोई महानगरपालिका की गाड़ी नहीं आयी. जाने किसने बॉक्सर को ज़हर दिया. बेचारा घर तक भी नहीं पहुंच पाया. भैया को किसी के द्वारा पता चला. दूसरी गली में बॉक्सर मृत पाया गया. घर सूना हो गया.

हमारी स्मृतियों में खुद को छोड़ एक एक कर सभी जा चुके थे. सूरज उगता है. हवाएं चलती हैं. हम बच्चे बड़े हो चुके थे. अपनी अपनी पढ़ाई में मशगूल ... लेकिन शबनम घास पर अब भी नज़र आती हैं जब जब देखने की इच्छा होती है.❑

अच्छा आदमी बनाम अच्छा शायर

'आधा गांव' जैसे उपन्यास के लेखक राही मासूम रजा तब थे तो अलीगढ़ विश्वविद्यालय में पी.एचडी के छात्र पर उनकी कविताओं की चर्चा दूर-दूर होती थी. उम्र में उनसे कहीं बड़े एक जनाब अपनी गज़लें लेकर उनसे सलाह के लिए आते थे. ठीक-ठाक ही होती थीं उनकी गज़लें, पर होती सपाट बयानी भी. कुछ नया नहीं होता था उनके कलाम में. सो, एक बार राही साहब ने उन्हें कह ही दिया, 'यार, तुम गज़ल मत कहा करो. तुम बहुत अच्छे इंसान हो. अच्छे रिसर्चर हो. अच्छे शौहर हो, अच्छे बाप हो...अच्छे पड़ौसी हो. तुम इतने अच्छे हो कि उतना अच्छा आदमी अच्छी गज़ल नहीं कह सकता!'

दोहे

● विद्यारानी

पंचम में पिक फूटते, अमराई में रोज।
कभी मंद, फिर तीव्र में, रहे हृदय-घन खोज।।

मनमोहक ऋतु आ गयी, मनभावन मधुमास।
कली-कली है चाहती, भौंरे आवे पास।।

मधु ऋतु की दीवानगी, मधु में खोया ठौर।
आम्र डालियां झूमती, ले, ले, नूतन बौर।।

नव कोंपल उग देखते, धरती का शृंगार।
प्यारा मोहक दीखता, ये सारा संसार।।

जूही बेला मोगरा, महमह करता बाग।
आया वसंत प्यार से, मन से गूंजे फाग।।

पसर रही सखि चांदनी, गिरि वन उपवन गांव।
नदी नदी पर डालती, धीमे धीमे पांव।।

चंदा आया दूर से, मिली अकेली-रात।
शब्दहीन अनुगूंज में, खुली सुहानी बात।।

पूर्णचंद्र ले अंक में, सागर दौड़ा जाय।
लहर झकोरे जोर से, बहता पिघला आय।।

दिव्य पुलक में खोलती, भू के प्राण मरोर।
छलक चांद से चांदनी, फैली चारों ओर।।

छलके जल कण गागरी, उछल उछल गिर जाय।
बूंद-बूंद विधु झांकता, अगनित छवि दिखलाय।।
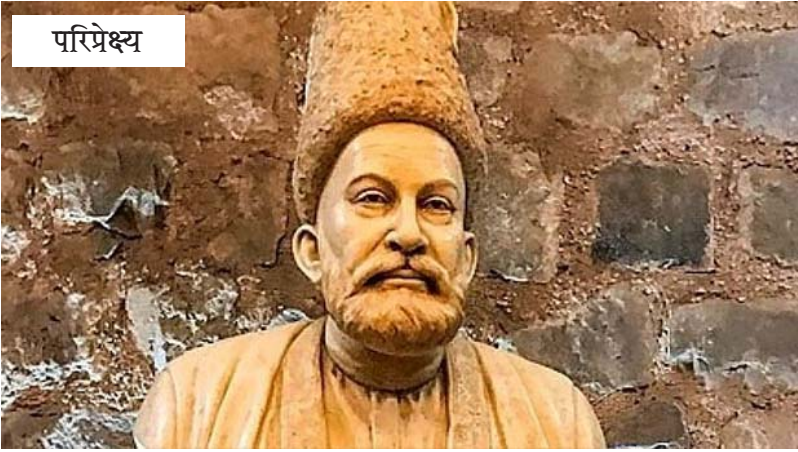
गुलज़ार के मिर्ज़ा गालिब

● देवमणि पांडेय

मिर्जा ग़ालिब ने पालकी में बैठे शायर इब्राहिम ज़ौक़ की तरफ़ एक जुमला उछाला– 'बना है शाह का मुसाहिब फिरे है इतराता'. अंतिम मुग़ल बादशाह बहादुर शाह ज़फ़र के उस्ताद थे ज़ौक़ साहब. ये खबर बादशाह तक पहुंच गयी कि मिर्ज़ा नौशा उर्फ़ ग़ालिब ने ज़ौक़ साहब का मज़ाक उड़ाया. लाल किले में जुम्मे का मुशायरा था. ज़ौक़ साहब के इशारे पर मिर्ज़ा नौशा (ग़ालिब) को दावतनामा भेजा गया. मुशायरे के आगाज़ के समय बादशाह ने ग़ालिब से इस जुमले की वजह पूछी. मिर्ज़ा नौशा (ग़ालिब) ने फ़रमाया– ये तो उनकी ताज़ा ग़ज़ल के मक़्ते का मिसरा ऊला है. बादशाह ने कहा– मक़्ता पेश किया जाए. ग़ालिब ने पेश कर दिया–

बना है शाह का मुसाहिब फिरे है इतराता
वगर्ना शहर में ग़ालिब की आबरू क्या है

भरपूर दाद मिली. ज़ौक़ साहब ने तंज़िया लहजे में कहा– मक़्ता इतना खूबसूरत है तो ग़ज़ल क्या होगी? बादशाह की गुज़ारिश पर ग़ालिब ने जेब से काग़ज़ निकाला और ग़ज़ल का मतला पेश किया–

हर एक बात पे कहते हो तुम कि तू क्या है
तुम्ही कहो कि ये अंदाज़ ए गुफ़्तगू क्या है

मतले पर भी दाद मिली. अगले शेर पर तो शेख़ इब्राहिम ज़ौक़ ने भी दाद दी–

रगों में दौड़ते फिरने के हम नहीं क़ायल
जो आंख ही से न टपका तो फिर लहू क्या है

इस शेर पर दाद के साथ मुक़र्रर की आवाज़ भी बुलंद हुई. साथ में बैठे शायर ने मिर्ज़ा ग़ालिब के हाथ से वो काग़ज़ लेकर हैरत से देखा. वह काग़ज़ कोरा था. उस पर कोई ग़ज़ल नहीं थी. मौके की नज़ाकत देखकर तत्काल ग़ज़ल कह देने का कमाल मिर्ज़ा ग़ालिब ही कर सकते थे. कुल मिलाकर कहा जाए तो गालिब ने यह मुशायरा लूट लिया था. इस कामयाबी के साथ उनकी शोहरत दिल्ली पर छा गयी.

सन् 1988 में अंधेरी मुम्बई के फ़िल्मालय स्टूडियो में मेरी आंखों के सामने यही दृश्य फ़िल्माया जा रहा था. मुम्बई के फ़िल्मालय स्टूडियो में नितीश राय द्वारा निर्मित मिर्ज़ा ग़ालिब के विशाल सेट को देखकर लगता था कि जैसे ग़ालिब की दिल्ली की गली क़ासिम और बल्लीमारान मुहल्ला ही उठकर चला आया हो. मिर्ज़ा ग़ालिब धारावाहिक के कार्यकारी निर्माता जय सिंह ने मुझे इसी सेट पर लंच के लिए आमंत्रित किया था.

मई का महीना था. दोपहर की तेज़ धूप, भयंकर गर्मी और जानलेवा उमस थी. पसीने से लथपथ चार कहारों के कंधों पर एक पालकी आ रही थी. उसमें शायर इब्राहिम ज़ौक़ (शफी इनामदार) थे. नुक्कड़ पर एक जूती की दुकान पर कुछ दोस्तों के साथ मिर्ज़ा ग़ालिब (नसीरुद्दीन शाह) बैठे हुए थे. जैसे ही पालकी उनके पास से गुज़री उन्होंने बुलंद आवाज़ में एक जुमला उछाल दिया– 'बना है शाह का मुसाहिब फिरे है इतराता.' इस पर पहले वाह-वाह हुई फिर ज़ोरदार ठहाका सुनाई पड़ा.

दो बार रिटेक हुआ. गर्मी से परेशान यूनिट के कुछ लोग चीखने चिल्लाने लगे. गुलज़ार का एक सहायक कहारों पर भड़क उठा. रिटेक कहारों की चाल की वजह से हुआ था. धूप और गर्मी से बेहाल कहार कभी मध्यम तो कभी तेज़ चाल में आते. टाइमिंग मैच न होने से रिटेक हो जाता था. जब यूनिट के अधिकांश लोग गर्मी और गुस्से में उबल रहे थे तो मैंने देखा– एक सहायक के छाते के नीचे खामोश खड़े गुलज़ार मंद मंद मुस्कुरा रहे थे. उनको देख कर लगता था कि इस इंसान को कभी ग़ुस्सा ही नहीं आता. आखिर शाट ओके हुआ और लंच की घोषणा हो गयी.

गुलज़ार कभी मिर्ज़ा ग़ालिब की ज़िंदगी पर अभिनेता संजीव कुमार के साथ एक फ़िल्म बनाना चाहते थे. तब इस योजना पर वे अमल नहीं कर पाए. उत्तर प्रदेश के बिजनौर ज़िले के व्यवसायी जय सिंह ने जैसे ही ग़ालिब पर धारावाहिक बनाने का प्रस्ताव रखा गुलज़ार ने सहमति दे दी. पटकथा पहले से तैयार थी. कुछ तब्दीलियां करके उसे धारावाहिक का रूप दिया गया. मंडी हाउस ने गुलज़ार साहब के इस प्रस्ताव को मंज़ूर कर लिया.

फ़िल्म निर्माण में पैसा लगाना बहुत

बड़े जोख़िम का काम है. पैसा डूबने का डर हमेशा लगा रहता है. बहुत कम लोग हैं जिन पर भरोसा किया जा सकता है. निर्माता जय सिंह की नज़र में गुलज़ार बहुत नेक और ईमानदार इंसान हैं. इसलिए उन्होंने गुलज़ार पर भरोसा किया. कई सालों की मेहनत से कमाई धनराशि व्यवसायी जय सिंह ने गुलज़ार साहब को सौंपकर कहा कि इन्हीं पैसों से मेरे लिए एक फ़िल्म बना दीजिए. सन् 1982 में गुलज़ार ने उनके लिए फ़िल्म 'अंगूर' बना दी. जयसिंह फ़िल्म निर्माता बन गये. उन्होंने जितना पैसा लगाया था उससे ज़्यादा वापस आ गया. दुबारा गुलज़ार ने उनको मिर्ज़ा ग़ालिब धारावाहिक के रूप में एक शानदार तोहफ़ा दिया.

मिर्ज़ा ग़ालिब की निजी ज़िंदगी के कुछ ख़ास पहलुओं पर पहले भी एक फ़िल्म बन चुकी है. इस फ़िल्म में भारत भूषण और सुरैया ने काम किया था. इस फ़िल्म की सबसे बड़ी कमज़ोरी इसकी अति नाटकीयता थी. एक तवायफ़ के साथ ग़ालिब के रिश्तों को इसमें कुछ ज़्यादा ही अहमियत दी गयी थी. यह फ़िल्म ग़ालिब की ज़िंदगी, उनके फ़न, उनकी शख़्सियत और उस दौर के हालात को बख़ूबी साकार नहीं कर पायी जिनसे गुज़र कर असद उल्लाह खां एक दिन मिर्ज़ा ग़ालिब बन गये थे.

गुलज़ार अपने मिशन में कामयाब हुए. अपने सोलह किस्तों के धारावाहिक में उन्होंने मिर्ज़ा ग़ालिब के फ़न, शख़्सियत और हालात को इस तरह छोटे पर्दे पर उतारा कि एक महान शायर की दास्तान को ज़िंदगी मिल गयी. फ़िल्म 'मीरा' के फ्लॉप होने के बाद गुलज़ार की हिम्मत नहीं हो रही थी कि मिर्ज़ा ग़ालिब पर फ़िल्म बनायें. उन्होंने जय सिंह से कहा– लेकिन इस आग को सीने में दबाये मैं मरना भी नहीं चाहता.

गुलज़ार इस मायने में खुशनसीब हैं कि ग़ालिब की ज़िंदगी और हालात पर सामग्री जुटाने में उन्हें कैफ़ी आज़मी से काफ़ी मदद मिल गयी. फ़िल्म निर्देशक सुखदेव ने मिर्ज़ा ग़ालिब पर फ़िल्म बनाने की योजना बनायी थी. उनके निधन के बाद यह योजना धरी की धरी रह गयी. उनके लिए मिर्ज़ा ग़ालिब पर सारा शोध कैफ़ी आज़मी ने किया था. उनके इस शोध को सम्मान देते हुए गुलज़ार ने स्क्रीन पर अपने नाम के ऊपर कैफ़ी आज़मी का नाम दिया.

एक बेहतरीन शायर होने के साथ ग़ालिब एक अच्छे पत्र लेखक भी थे. अपने खतों में उन्होंने समय-समय पर होने वाली महत्वपूर्ण घटनाओं का को भी दर्ज किया है. इन खतों से न सिर्फ़ ग़ालिब के निजी जीवन की दिलचस्प जानकारियां मिलती हैं बल्कि ये अपने समय के ऐतिहासिक दस्तावेज भी हैं. अपने धारावाहिक में इन

खतों के ज़रिये गुलज़ार ने उस दौर की महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं की तह में जाने की सराहनीय कोशिश की. ग़ालिब और बहादुरशाह ज़फ़र का ज़माना एक था. इसी ज़माने में 1857 का गदर हुआ. इस उथल-पुथल भरे दौर में ग़ालिब की शायरी क्या ख़ास मायने रखती है, इस खोजबीन में गुलज़ार ने कई साल लगाये थे.

ग़ालिब की मुहब्बत में नवाब जान ने जान क़ुर्बान कर दी. वे ग़ालिब को नवाब जान की क़ब्र पर ले गयीं. ग़ालिब ने अपने कंधे पर से दुशाला उतारा और क़ब्र में लेटी नवाब जान को ओढ़ा दिया.

एक असाधारण इंसान पर बना गुलज़ार का यह धारावाहिक ज्ञानवर्धक भी है और अर्थपूर्ण भी. धारावाहिक में मिर्ज़ा ग़ालिब की भूमिका एक चुनौती थी. इस चुनौती के असली हक़दार थे नसीरुद्दीन शाह. ख़ुद उन्होंने ग़ालिब की भूमिका निभाने का सपना देखा था. टीवी धारावाहिकों में कभी काम न करने का फ़ैसला कर चुके नसीर के सामने जब गुलज़ार का प्रस्ताव आया तो उनका सपना साकार हुआ.

ग़ालिब की ज़िंदगी में कई तरह के उतार-चढ़ाव आये. गहरी निराशा, तंगहाली, पहचान का संघर्ष, आम लोगों से जुड़ने की आकांक्षा, दरबार में रहने की मजबूरी और दरबार से दूरी भी. हर तरह की आज़ादी के क़ायल ग़ालिब की ज़िंदगी में आशा और निराशा के बादल लगातार बरसते रहे. 14 साल की उम्र में उनकी शादी दिल्ली के मिर्ज़ा इलाही बख़्श (इफ्तिख़ार) की बेटी उमराव जान (तन्वी आज़मी) के साथ हुई. वे घर जमाई बनकर दिल्ली आ गये. शायरी, चौसर और कंचे के दीवाने ग़ालिब अपनी बेगम से बेइंतहा मुहब्बत करते थे.

दिल्ली में ग़ालिब का दिल रमा नहीं. इसकी सबसे बड़ी वजह थी उनकी शायरी की उपेक्षा. लोग उन्हें आगरे का शायर मानते थे दिल्ली का नहीं. उनका दीवान छापने को कोई प्रकाशक तैयार नहीं हुआ. अलबत्ता मशहूर तवायफ़ नवाब जान (नीना गुप्ता) के मुंह से अपना कलाम सुनकर वे ज़रूर ख़ुश हुए. यह भी कहा जाता है कि अगर चमत्कारिक रूप से नवाब जान ग़ालिब की ज़िंदगी में न आती तो ग़ालिब दिल्ली छोड़ कर चले गये होते.

एक दिन ग़ालिब अपने क़ुतुब फ़रोश (पुस्तक विक्रेता) दोस्त हाज़ी मीर की दुकान पर बैठे थे. उसी समय कोठे से आती हुई सुरीली आवाज़ सुनकर ग़ालिब दंग रह गये. कोई सुरों की मलिका उन्हीं की ग़ज़ल को आवाज़ दे रही थी. ग़ालिब ने हाज़ी मीर से कहा– पहली बार दिल्ली में किसी दूसरे के मुंह से अपनी ग़ज़ल सुन रहा हूं. ग़ालिब के पांव ख़ुद-ब-ख़ुद

कोठे की सीढ़ियां चढ़ने लगे. उन्होंने देखा– एक हसीना उन्हीं की ग़ज़ल गा रही है–

दिल ही तो है न संग ओ ख़िश्त दर्द से भर न आये क्यूं
रोएंगे हम हज़ार बार कोई हमें रुलाए क्यूं

तवायफ़ नवाब जान को वो अधूरी ग़ज़ल चूरन की एक पुड़िया में मिली थी. उसका मक़्ता ग़ायब था. ग़ालिब ने ग़ज़ल पूरी करवा दी. उन्होंने ख़ुद को ग़ालिब का दोस्त बताया. ग़ालिब को भरोसा हो गया कि जो ग़ज़ल तवायफ़ के कोठे तक पहुंच गयी वह एक दिन अवाम तक ज़रूर पहुंचेगी. नवाब जान एक उम्दा कलाकार थी. वह ग़ालिब की शायरी की प्रशंसक और प्रेरणा थी. अभिनेत्री नीना गुप्ता ने नवाब जान की भूमिका को असरदार तरीके से निभाया. नवाब जान (नीना गुप्ता) का हुस्न, अदा और मोहक अंदाज़ देखने लायक है जब वह ग़ालिब की ग़ज़ल पेश करती है–

दिल ए नादां तुझे हुआ क्या है
आख़िर इस दर्द की दवा क्या है

नवाब जान ग़ालिब को दीवानगी की हद तक प्यार करती थी. ग़ालिब को अपनी बीवी से मुहब्बत थी. उन्होंने हमेशा उसके साथ सम्मानजनक व्यवहार किया. अपनी बेगम के ज़ोर देने पर बच्चे की सलामती की दुआ मांगने ग़ालिब पहली बार पीर की मज़ार पर गये. वहां नक़ाबपोश नवाब जान ने उन्हें पहचान लिया. नवाब जान ने कहा- मेरे औलिया मेरी हर दुआ क़बूल करते हैं. मैंने उनसे दुआ मांगी है कि मेरे शायर को दिल्ली का सरताज बना दें. ग़ालिब ने कहा– ऐसा हुआ तो मैं तुम्हारे घर आकर एक दुशाला भेंट करूंगा. नवाब जान ने ग़ालिब को अपनी हथेलियां दिखाकर कहा– आपके इंतज़ार में हथेलियों की मेहंदी का रंग फ़ीका पड़ गया.

लाल क़िले के मुशायरे में जब दिल्ली ने ग़ालिब को अपना शायर मान लिया तो उन्होंने स्वीकार किया– ये शायद नवाब जान की दुआओं का असर है. ग़ालिब जब उसके घर गये तो मालूम हुआ कि शहर कोतवाल की धमकियों से तंग आकर नवाब जान शहर छोड़कर चली गयी. ग़ालिब जब अपनी पेंशन के मामले में कलकत्ता जा रहे थे तो बनारस में अचानक नवाब जान की मां से मुलाक़ात हुई. मालूम हुआ कि ग़ालिब की मुहब्बत में नवाब जान ने अपनी जान क़ुर्बान कर दी. वे ग़ालिब को नवाब जान की क़ब्र पर ले गयीं. ग़ालिब ने अपने कंधे पर से दुशाला उतारा और क़ब्र में लेटी नवाब जान को ओढ़ा दिया.

गुलज़ार के धारावाहिक मिर्ज़ा ग़ालिब में एक शायर के रूप में ग़ालिब के संघर्ष और उनकी त्रासद ज़िंदगी का बेबाक चित्रण किया गया. वास्तव में ग़ालिब की ज़िंदगी ही इतनी नाटकीय रही कि उनकी कहानी को परदे पर लाने के लिए कल्पना की ज़रूरत ही नहीं रह जाती. ग़ालिब की ज़िंदगी

का सबसे बड़ा हादसा था एक के बाद एक सात बेटों की मौत. इतनी बड़ी त्रासदी का सामना ग़ालिब और उनकी बेगम ने कैसे किया होगा. बेटों की मौत ने ग़ालिब को अंदर से तोड़ दिया. वे इतना टूट गये खुदा पर भी उनका भरोसा नहीं रहा. फिर भी उनकी बेगम के मन में आस्था की एक लौ टिमटिमाती रही कि ऊपर वाला जो भी करता है अच्छा करता है.

ग़ालिब का पागल भाई युसूफ़ कर्फ़्यू के दौरान मारा जाता है और वे उसके जनाज़े में शामिल नहीं हो पाते. ग़ालिब की ज़िंदगी की ये घटनाएं संवेदनशील लोगों की आंखें भिगो देने के लिए काफ़ी हैं. बेखौफ़ ग़ालिब ने खुद को जुए और शराब में डुबो दिया. जुआ खेलने के जुर्म में छ: महीने जेल की हवा खायी. इस कठिन दौर से गुज़रते हुए भी ग़ालिब की क़लम रुकी नहीं. दिनोंदिन और धारदार होती गयी.

जेल से बाहर निकलते ही ग़ालिब का दीवान प्रकाशित हो गया और उनकी शायरी की धूम मच गयी. एक शायर के रूप में ख़ुद को स्थापित करने के लिए ग़ालिब ने काफ़ी संघर्ष किया था. लेकिन उनको स्वीकृति और पहचान तब मिली जब वे अपना सब कुछ हार चुके थे.

एक दिन ग़ालिब ने हाज़ी मीर से दिल्ली छोड़कर लखनऊ जाने की ख़्वाहिश जतायी. हाज़ी मीर ने कहा– लखनऊ वाले दूसरे शहर के शायर को स्वीकार नहीं करते. ग़ालिब ने कहा– मैं उर्दू का शायर हूं, किसी शहर का शायर नहीं. दिल्ली, लखनऊ, इलाहाबाद, आगरा और हैदराबाद की कोख से अगर एक हिंदुस्तान पैदा होगा तो उसकी एक शाख़ पर मेरा भी आशियां होगा. बेगम जान ने ग़ालिब को दिल्ली का सरताज बनाया था. ग़ालिब के दीवान ने उन्हें हिंदुस्तान का सरताज बना दिया. शेख़ इब्राहिम ज़ौक़ के इंतक़ाल के बाद बहादुर शाह ज़फ़र ने ग़ालिब को अपना उस्ताद बनाया. कुछ समय बाद 1857 का गदर हो गया. ग़ालिब ने दिल्ली की तबाही अपनी आंखों से देखी. बादशाह को क़ैद करके अंग्रेज़ों ने रंगून भेज दिया. ग़ालिब फिर अकेले हो गये.

मिर्ज़ा ग़ालिब धारावाहिक के सेट पर शायर इब्राहिम ज़ौक़ की भूमिका कर रहे अभिनेता शफी इनामदार से गपशप हुई. मैंने ये जानना चाहा कि ज़ौक़ और ग़ालिब में टकराव की वजह क्या थी? वे बोले- ज़ौक़ साहब और मिर्ज़ा ग़ालिब कड़े प्रतिद्वंदी थे. अगर मिर्ज़ा ग़ालिब इस धारावाहिक के नायक हैं तो इब्राहिम ज़ौक़ विलेन हैं. दोनों उस समय के नंबर वन शायर थे और आख़िर तक नंबर वन ही रहे. हक़ीक़त यह है कि ज़ौक़ साहब दिल ही दिल में मिर्ज़ा ग़ालिब की प्रतिभा के क़ायल थे. लेकिन वे विरोध इस वजह से करते थे कि ग़ालिब की सम्भावनाओं को देखते

हुए उन्हें अपना सिंहासन डोलता नज़र आ रहा था. दोनों ही दिग्गज शायर थे मगर रहन सहन के स्तर पर फ़र्क़ था. ज़ौक़ साहब नमाज़ी आदमी थे. सादा जीवन बसर करते थे और इसका उन्हें गर्व था. दूसरी तरफ़ ग़ालिब मस्तमौला क़िस्म के इंसान थे. शराब पीते थे, जुआ खेलते थे और तवायफ़ के कोठे पर भी नज़र आ जाते थे. मगर उस समय के लोग प्रतिभा की क़द्र करना जानते थे. यही कारण है कि ज़ौक़ साहब जहां अबू ज़फ़र के उस्ताद थे वहीं ज़फ़र के बेटे मिर्ज़ा फ़खरू के उस्ताद मिर्ज़ा ग़ालिब थे.

मिर्ज़ा ग़ालिब धारावाहिक से ये सच सामने आया कि ग़ालिब एक असाधारण इंसान और महान शायर थे. वे कभी भी न तो अपनी शायरी में और न ज़ाती ज़िंदगी में साधारण आदमी की तरह जिये. ग़ालिब की ज़िंदगी के कैनवास पर प्यार का रंग भी उभरा लेकिन इश्क़ में कभी वे दीवाना नहीं बने.

मिर्ज़ा ग़ालिब को बड़े पर्दे पर उतारने का जो सपना गुलज़ार ने देखा था उस सपने को उन्होंने छोटे पर्दे पर साकार किया. गुलज़ार ने इतनी खूबसूरती से इस काम को अंजाम दिया कि लोग कहने लगे– मिर्ज़ा ग़ालिब की दास्तान ए ज़िंदगी को उनके अलावा कोई दूसरा इतने असरदार तरीक़े से साकार नहीं कर सकता था. गुलज़ार ख़ुद भी एक हस्सास शायर हैं. उन्होंने ग़ालिब की ज़िंदगी की त्रासदी और ग़ालिब की शायरी की संवेदनशीलता को मिलाकर जो तस्वीर बनायी ग़ालिब की वह तस्वीर लोगों को बहुत भायी. उस तस्वीर में ज़िंदगी के जीते जागते अक्स थे. उस तस्वीर के नक्श बोल रहे थे. उस तस्वीर में एक महान शायर की ज़िंदगी सांस ले रही थी. कुल मिलाकर मिर्ज़ा ग़ालिब धारावाहिक के रूप में गुलज़ार ने हमें एक बेमिसाल तोहफ़ा दिया. इस धारावाहिक के ज़रिये गुलज़ार ने साबित किया कि इतिहास को दोबारा ज़िंदा किया जा सकता है.

हैं और भी दुनिया में सुख़नवर बहुत अच्छे
कहते हैं कि ग़ालिब का है अंदाज़ ए बयां और

मिर्ज़ा ग़ालिब का कालजयी संगीत जगजीत सिंह ने तैयार किया. जगजीत और चित्रा की आवाज़ में मिर्ज़ा ग़ालिब की उर्दू शायरी हिंदुस्तान के घर घर तक पहुंच गयी. फ़कीर (जावेद ख़ान) के लिए जगजीत ने विनोद सहगल की आवाज़ का शानदार उपयोग किया.

अगर आप पटकथा और संवाद लेखन में दिलचस्पी रखते हैं तो आपको रूपा एंड कंपनी से प्रकाशित यह किताब ज़रूर पढ़नी चाहिए–‘मिर्ज़ा ग़ालिब : अ बायोग्राफिकल सिनेरियो बाय गुलज़ार’ मशहूर कवि-लेखक, यतींद्र मिश्र इन दिनों गुलज़ार साहब की आत्मकथा पर काम कर रहे हैं. ❑

शिव प्रथम नारीवादी हैं, दाम्पत्य के देवता हैं

● डॉ. गरिमा संजय दुबे

कुछ अजीब-सा लगता है न यह सुनना. बैराग के चरम के प्रतीक को 'दाम्पत्य का देवता' कहा जाना सहसा चौंका देता है न. किंतु शिव तो हैं ही विपरीत विषमताओं को साधने वाले आदि साधक, परम योगी. चकित करते हैं अपने रहस्यमयी सौंदर्य से, तो कभी भयभीत करते हैं अपने रुद्र अवतार से. शिव का रहस्यमयी स्वरूप कितना सम्मोहक है, रहस्य में सम्मोहन तो होता ही है. शिव सा सुंदर कौन? और शिव सी उदारता का छोर कौन ढूंढ़े? पिनाकपाणी, महादेव, अजन्मा, अगोचर, हिमालय मानसरोवर जैसे दुरूह स्थान पर जिसका निवास हो, जो श्मशान का सहज अनुरागी हो वह आदर्श दाम्पत्य का प्रतीक कैसे हुआ? उन्हें तो भय का पर्याय होना चाहिए, विनाश का देवता क्योंकर सृजन का, गृहस्थ का देवता हुआ? कैसे वह हर स्त्री की कामना का केंद्र बने? क्यों गृहस्थ

की कामना लिये हर कुंवारी कन्या के लिए शिव पूजन के विधान हुए? कल्याण स्वरूप शिव, अवढर दानी, महायोगी आदिदेव महादेव के किस रूप की व्याख्या करें और कौन धृष्टता करे व्याख्या की. रहस्य और सम्पूर्ण जगत की चेतना को मुग्ध कर देने वाली इस दिव्य चेतना, ऊर्जा पिंड के आध्यात्मिक विश्लेषण यदि एक सामान्य मनुष्य से परे हों तो भी जनमानस में इस सौंदर्य विग्रह से अधिक स्वीकार्यता किसी और देव की नहीं है. बकौल सुशोभित शक्तावत राम, कृष्ण, गणपति चाहे स्त्रियों के आराध्य क्यों न हों वे आदर्श रूप में तो उन्हें पूजती हैं किंतु पति रूप में शिव से जीवनसाथी की कामना लिये होती हैं. दाम्पत्य जीवन की सफलता की कामना लिये सदियों से भारतवर्ष में शिव-पार्वती की पूजा होती रही है. पार्वती के शिव को पाने के तप के प्रतीकात्मक अर्थों में व्रत बनाये गये. किसी और देवता की पूजा दाम्पत्य के इन गहन अर्थों में नहीं की गयी.

विभिन्न विरोधाभासों और मुग्ध कर देने वाले व्याख्यानों से भरे महादेव की विराटता कुछ इस कदर विश्व व्याप्त है कि पूरे विश्व में सबसे अधिक मंदिर भी उन्हीं के हैं. ऐसा क्या है जो शिव को हमसे इस कदर जोड़ देता है. संन्यासी, भयानक स्वरूप को धारण करने वाले, श्मशान निवासी शिव कैसे गृहस्थों के आदर्श हो सकते हैं? लेकिन हैं. क्या उनकी सहजता, सरलता, आशुतोष मन, आडम्बरहीन जीवन, पुरुषार्थ, मानव कल्याण के लिए अपने को उत्सर्ग कर देने की भावना या कुछ और.

भारतीय जीवन पद्धत्ति में परिवार एक ऐसी संस्था या व्यवस्था का नाम है जिसे समाज की रीढ़ कहा जाता है. कितना विरोधाभास है कि सदा समाधि में लीन रहने महायोगी आदियोगी शिव एक परिवार के रूप में दाम्पत्य का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत करते हैं. कौन ऐसी स्त्री होगी जो शिव परिवार जैसे परिवार की आकांक्षी न हो. गृहस्थ और दाम्पत्य का ऐसा सौंदर्य किस देवता की जीवनगाथा में वर्णित है. वे कलापुरुष हैं नृत्य, वादन गायन के आदि देव हैं, तांडव के सर्जक हैं, प्रकृति की आदि शक्ति के सहयोगी हैं, वे नटराज हैं, वे शिव हैं मंद स्मित और अधोन्मिलित नेत्र से सृष्टि का क्रियाकलाप देखते महाराजा हैं. वे नीलकंठ हैं जो विश्व के कल्याण के लिए प्रस्तुत हैं. उदार इतने कि कलंकित चंद्र को शीश पर धार चंद्रमौलि कहलाते हैं. जिनकी शरण में विपरीत स्वभाव के पशु भी साहचर्य दिखाते हैं. कौन स्त्री इन सद्‌गुणों से प्रभावित नहीं होगी.

शिव एकमात्र ऐसे देवता हैं जो स्त्री के अस्तित्व को समकक्ष रूप में स्वीकारते हैं और उसे कभी भी अपने से कम नहीं आंकते. आध्यात्मिक अर्थों में देवताओं

के विग्रह अपनी सहचरी के साथ हैं किंतु लक्ष्मी से चरण दबवाते विष्णु को स्त्री पति रूप में नहीं चाहती. अग्नि परीक्षा और सीता के त्याग को कपोल कल्पना में भी लें तो भी संघर्ष पूर्ण राम-सीता के दाम्पत्य को आदर्श माना जा सकता है, किंतु वह अभीष्ट नहीं है.

कृष्ण के तो जीवन के संघर्ष चाहे प्रबंधन के गुण सिखाते हों, उन्हें पूर्ण पुरुष, लीलाधर बताते हों किंतु इतने युद्ध और असंख्य महारानियों के साथ का जीवन पारिवारिक आदर्श प्रस्तुत नहीं करता. असम्भव-सा लगता है. वे प्रेम मूर्ति हैं वे प्रेमी हो सकते हैं पति के रूप में स्वीकार्य नहीं हैं.

वे तो शिव ही हैं जो पत्नी के वियोग में उसका शव ले युगों तक ब्रह्मांड में घूमते रहे हों और शक्ति पीठों में खंड खंड सती देह को देख विषाद में समाधिस्थ हो जाएं.

कहीं प्रयास नहीं है वहां किसी आदर्श को प्रस्तुत करने के लिए स्त्री को त्यागने का, स्त्री के लिए उनके विलाप को सामाजिक लांछना का भय नहीं है, कोई विवशता नहीं है स्त्री को आध्यात्मिक साधना या वैराग्य की राह की बाधा बताने की. वे तो सामान्य मनुष्य की तरह स्त्री के वियोग में ब्रह्मांड से विरक्त होने में लज्जित नहीं हैं.

वियोग में विकल महादेव सहज ही हमें अपने से जोड़ लेते हैं. अतिमानवीय क्षमताओं से सज्जित महादेव कभी हमें अप्राप्य नहीं लगे क्यों, क्योंकि आदियोगी, नीलकंठ महादेव ने मानवीय गुणों व आदर्शों का ऐसा रूप प्रस्तुत किया है जो विष्णु के मानवीय अवतार नहीं कर सके. वे देव होकर भी सहज रहे, मानवीय रहे. उनके देवत्व में सभी मानवीय गुण, संताप, क्लेश, आल्हाद, विषाद, क्रोध, मोह पूरी मानवीयता से उभरते हैं. किंतु आश्चर्य है न कि हमारे समाज में सीता को त्यागने वाले, द्रोपदी की रक्षा करने वाला पुरुष का स्वरूप जितना स्वीकार्य है उतना स्त्री के लिए त्याग करने वाला, विलाप करने वाला स्वरूप नहीं. क्यों? खैर.

पूछ कर देखिए कौन स्त्री अपने पति को उसके वियोग में विह्वल देख आनंदित नहीं होती, वह चाहती है. अपने प्रेम में पति को विह्वल होते देख किस स्त्री को आनंद न मिलता हो.

होगा नारी विमर्श 20वीं-21वीं सदी की घटना किंतु यदि सती और पार्वती के रूप में आपने उसे नहीं देखा तो फिर से अध्ययन की दरकार है. सती ज़िद्दी हैं, पिता की इच्छा के विरुद्ध तप कर शिव को पा लेने की हठधर्मिता, पति का अपमान होते देख खुद निर्णय ले अपने को होम कर देने वाली नारी से अधिक स्वतंत्र और कौन होगा. पुन: जन्म ले अपनी ज़िद से पार्वती बन शिव के वामांग में बैठने का

अधिकार पाती हैं, कुशल गृहिणी बन परिवार का पोषण करने वाली अन्नपूर्णा, दीन दुखियों के दुख से द्रवित हो उनके लिए शिव को मनाने वाली ममतामयी मां, और क्रोध में आकर छिन्नमस्ता बन दुष्टों का संहार करने वाली महाकाली ऐसी स्वयंसिद्धा स्त्री के रूप में जो महादेव की सहचरी आदि शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित है तो आम स्त्री और किस देव को आराधे और क्यों. काम को भस्म का पुनर्जीवन देने वाले बैरागी शिव, पत्नीव्रती, श्रेष्ठ पूजनीय संतानों के पिता, क्या वे आदर्श गृहस्थ जीवन की व्याख्या नहीं करते? किस देवता का ऐसा गृहस्थ जीवन है हमारे बीच?

अर्धनारीश्वर बन शिव शक्ति के संयोग से सृष्टि और प्रकृति के नियमों का संचालन कर स्त्री की गरिमा का ऐसा मान जहां हो वहां स्वीकार्यता नहीं होगी तो कहां होगी.

शिव वैराग्य के ही नहीं दाम्पत्य के भी देवता हैं. बैराग व दाम्पत्य जैसे दो विपरीत ध्रुव एक साथ साधना केवल शिव के लिए ही सम्भव है इसीलिए वे महादेव हैं.

गौरा पार्वती, अनुगामिनी नहीं हैं, वह हर निर्णय की सहभागी हैं. अर्धनारीश्वर हो समान गरिमा का निर्वहन है वहां. इसलिए शिव अभीष्ट हैं. सम्पूर्ण जगत का लीला विन्यास जिनकी भृकुटि के कम्पन मात्र से विचलित होता हो, जिनके मुस्कान में बसंत शरद आह्लादित होते हों प्रकृति नटी जिनके इशारों पर नाचती हो, जहां ओंकार नाद गूंजता हो, जिसके तीसरे नेत्र में विनाश समाया हो, जो पराशक्तियों के स्वामी हों, बड़े दुर्लभ लगते हों किंतु आशुतोष शिव सबके प्रिय हैं सहज प्राप्य हैं, और समस्त मानवीय पुरुष अवतार सहज होते हुए भी भारतीय स्त्रियों के अभीष्ट नहीं हैं.

भस्म लपेटे कर्पूर गौरं शिव से सुंदर कौन, जहां सदा वसंत हो वहां क्यों न साधक जाना चाहे, जिनका रौद्र रूप यदि भयानक है तो उनकी सौम्यता का कोई अंत नहीं, जिसकी करुणा बिना भेद सब पर बरसे. जिनका पौरुष किसी स्त्री के त्याग का आकांक्षी नहीं, जो यह साहसिक घोषणा सगर्व करते हों कि शक्ति के बिना, स्त्री तत्व के बिना शिव केवल शव हैं, जो स्वयं विपत समय में महागौरी की सुसुप्त ऊर्जा का, शक्ति का आह्वान कर उसके महाकाली रूप के जागरण का हेतु बनते हैं. और इतने सरल कि संसार के कल्याण के लिए स्वयं महाकाली के चरणों में अपनी छाती दे देने वाले निरहंकारी भोलेनाथ को न प्रेम करे संसार तो किसे करे!

शिव प्रथम नारीवादी हैं. वे ही अभीष्ट हैं, वे ही तो हो सकते हैं कोई और नहीं.

कर्पूरगौरं करुणावतारं
संसारसारं भुजगेंद्रहारम्।
सदा बसंतं हृदयारविंदे
भवं भवानीसहितं नमामि।। ❑

कहानी

कैंडल मार्च

● रेणुका अस्थाना

आज पूरी कॉलोनी में बिजली होने के बाद भी अंधेरा था. क्योंकि कॉलोनी के सारे निवासी अपने अपने घरों को अंधेरा करके हाथ में मोमबत्ती थामे बाहर खड़े थे. कुछ इच्छा से तो कुछ अनिच्छा से. कुछ में देश के भंयकर घोटालों पर विद्रोह का भाव था तो कुछ की मस्ती. और कुछ में समय नष्ट होने का क्रोध.

पर सभी इकट्ठे थे.

कॉलोनी के प्रेसीडेंट के आते ही सब उनके साथ धीरे-धीरे सड़क पर आ गये. हाथ में मोमबत्ती थामे वे शिष्टता से सड़क की बाईं ओर चल पड़े.

थोड़ा हंसते थोड़े चुप से. पर थोड़ी देर बाद ही सबके भीतर, जलती मोमबत्ती का प्रकाश धीरे-धीरे फैलने लगा. एक ने छोटी-सी रैली के संचालक के पास जाकर धीरे से पूछा– 'सर! पुलिस व्यवस्था की है आपने?'

'क्या यार? बिना पुलिस के कोई भी काम सम्भव है इस देश में? पुलिस से ही तो देश चल रहा है.'

'सर! किसी अच्छे अखबार का रिपोर्टर भी' ...साथ चलते दूसरे व्यक्ति ने पूछा.

'हां जी है.' संचालक ने गुरूर से आंखों को चढ़ाया. वह सफेद टी-शर्ट पर जो ग्रे लाइन देख रहे हो?

'अच्छा-अच्छा. मिस्टर शर्मा के साथ वह जो कैमरा लटकाये चल रहा है?'

'रिपोर्टिंग, फोटोग्राफी दोनों वही करेगा?'

'क्यों-? क्या बुरा है? अरे! कोई दंगा या हाईप्रोफाइल कांड विज़िट करने जाना है क्या जो रिपोर्टर अलग जाएगा और फोटोग्राफर अलग–?' संचालक ने घूर कर उस व्यक्ति को देखा.

'मेधावी पत्रकार है वह.'

'तुम बस किसी घटना या कार्यक्रम की दो चार लाइन बता दो? बस्स! वह पूरा का पूरा विवरण इतना अच्छा छाप देगा कि पढ़ने वाले भी देश की समस्या/देश का गुण-दोष भूलकर, उसी में दसों दिन निकाल देंगे. और क्या चाहिए?'

'जे लो चैनल वाले भी आ गये.' संचालक ने सबको सुनाते हुए ज़ोर से कहा. मोमबत्ती संभाले चलती भीड़ थोड़ी अव्यवस्थित हो गयी. सभी सामने से,

सामान उठाये चले आ रहे उन दो लोगों को देखने लगे जो विशेष होने के गुरूर से अकड़े चले आ रहे थे.

कुछ लोग भनभनाये– 'लोकल है यार.'

'तो क्या! रहोगे छोटी-सी जगह में सपना राजधानी का देखोगे?' संचालक ने घूरकर देखा.

'लोकल चैनल ही सही, हमारे चेहरे भी टीवी पर आयेंगे.' महिलाएं और बच्चों के साथ कुछ पुरुष और युवा भी खुश हो गये. सबकी बातें सुनता संचालक सबसे आगे जाकर खड़ा हो गया और लगा नारा लगाने– 'भ्रष्टाचार मिटायेंगे/ शासन को सबक सिखायेंगे.'

'श्यामलाल जी. श्यामलाल जी.... हम तुम्हारे साथ हैं.'

'डरने की नहीं बात है.'

संचालक एक लाइन बोलता और सारे आगे वाली लाइन को ज़ोर शोर से यूं दुहराते जैसे जीवन का कोई महत्वपूर्ण पाठ याद कर रहे हों. या किसी सद्कर्म की शपथ ले रहे हों. एक छोटे से शहर की, जलती मोमबत्ती संभाले, कॉलोनी की यह भीड़, अपने संचालक के साथ नारा लगाती, हंसती, थोड़ा गप्पे करती शहर के उस मुख्य चौराहे पर आ खड़ी हुई जहां से सामने ही राष्ट्रीय राजमार्ग साफ दिख रहा था. जहां पर अपने-अपने घरों मुहल्लों को अंधेरा करके हाथ में जलती मोमबत्ती पकड़े, टुकड़ों टुकड़ों में बंटी भीड़, बल्ब से उजाले भरी सड़क पर खड़ी थी. और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यह वही चौराहा है जहां से सामने राष्ट्रीय राजमार्ग पर तीनों दिशाओं से आने वाली ट्रकों को रोक कर यहां खड़े सिपाही/उनके अधिकारी/बिना चुंगी लिये आगे जाने का रास्ता नहीं बनाते? बहुत उदार हृदय वाले हैं ये पुलिस वाले?

इस चौराहे पर पत्रकार का विलक्षण व्यक्तित्व भी जाग गया. अपनी भाषा को अपने चमड़े के बैग में घुसा कर वह सरकार और घोटालों पर उन लोगों से अंग्रेज़ी में प्रश्न करने लगा जो थोड़े अंग्रेज़ से दिख रहे थे. पीछे वालों ने बुरा-सा मुंह बनाया. आगे वाले उनके पास खिसक आये. उसी समय चैनल वालों ने भी अपना कैमरा शुरू कर दिया. लोग जलती हुई मोमबत्ती को संभालते, भीड़ बना कर कैमरे की ओर बढ़ चले.

संचालक के साथ पुलिस ने व्यवस्था अपने हाथ में संभाल ली. लोग क्रोध में भर गये. कुछ मोमबत्ती वहीं सड़क पर फेंक किनारे हो गये तो कुछ संचालक से भिड़ गये.

'हर जगह राजनीति होती है.'

'हर जगह गुटबाजी.'

'इनके लोगों से ही पत्रकार प्रश्न पूछेगा?'

'हम लोग क्या फालतू हैं?'

'और चैनल वाले भी तो इन्हीं के लोगों की फोटो ले रहे हैं.'

क्रोधित भीड़ बड़बड़ाती बिखरने लगी. संचालक ने सबसे बातें करके, समझाकर फिर से सबको साथ किया. फोटो खिंचवायी. तब जाकर कहीं लोग आगे बढ़े. पर पीछे वाले अब भी थोड़ा निराश से/दुखी से थे. क्योंकि वे समझ गये थे कि इस ऐतिहासिक क्रांति के मार्च का हिस्सा होते हुए भी वे आजीवन गुमनाम रह जाएंगे? जैसे स्वतंत्रता संग्राम क्रांति के समय हुआ था. उस समय भी चमचे/चालाक और सम्बंध ही उभर कर सामने आये या फिर वे जो बिचारे फांसी पर चढ़े.

तभी एक ने पूछा– 'यार! समय क्या हो रहा है?'

'दस बज रहे हैं.' दूसरे ने मोबाइल देख कर उत्तर दिया. 'कोई काम है क्या?'

'हां! एक आदमी को मिलने का समय दिया था.'

'कुछ विशेष.'

'हां यार. थोड़ी पैसे की डील थी.' बाल में उंगलियां फिराते उसने थोड़ा गर्व थोड़ी परेशानी दिखाते कहा.

'ज़्यादा अमाउंट... पूछने वाला और पास खिसक आया.'

वही दोनों नारे फिर शुरू हो गये. अंतर बस इतना था कि अंधेरे घर से निकलते समय, जो जली हुई मोमबत्तियां साथ में आयी थीं, वह या तो बुझ गयी थीं, या सड़क किनारे फेंक दी गयी.

'नहीं! यही कोई चार पांच लाख का है.'

'मुनाफा या.....'

'बिना मुनाफा मुझे कुत्ता काटे है किसी की डील पक्की कराने का.' वह हंसा था. सालों बीत गये सरकार कौन-सी ईमानदारी की ज़मीन पर चल रही है? उसके शब्दों में ठसक भरा विद्रोह था. 'याद नहीं क्या सारे घोटाले?'

'क्या अंकल आप लोग कितनी बातें करते हैं? हमारे साथ आप लोग भी नारा लगाइए तभी तो हमारे प्रधानमंत्री तक हमारी आवाज़ जाएगी.' साथ चलते बच्चों में से एक दो ने अपना पसीना पोंछते थोड़ा क्रोध थोड़ा दुख से कहा.

'सॉरी-सॉरी बच्चों. सॉरी यार.'

'आज के बच्चे बड़े ही इंटेलीजेंट हैं.'

और वही दोनों नारे फिर से शुरू हो गये. अंतर बस इतना था कि अंधेरे घर से, निकलते समय, जो जली हुई मोमबत्तियां साथ में आयी थीं, वह या तो बुझ गयी थीं, या सड़क किनारे फेंक दी गयी थीं.

तभी किसी का मोबाइल बजा...

यस हां! मैं डॉक्टर विनय बोल रहा...

'क्या?'

'पेशेन्ट की हालत ज़्यादा खराब

हो रही.'

'घबराइए नहीं. आप एक काम करिए. केबिन में डॉ. शिवा बैठे होंगे. आप उनसे मिलिए. वह सब संभाल लेंगे.'

'हां हां. घबराइए नहीं.'

मैं! मैं आपकी परेशानी समझ रहा हूं पर इस समय मैं एक ऑपरेशन में फंसा हूं.

प्लीज-प्लीज....

डॉ. विनय ने फोन काट दिया.

सबको वापस लौटते-लौटते रात के ग्यारह बजने को आ रहे थे. सुस्त थके से पैर कॉलोनी का फाटक देखकर जैसे जान पा गये. सबने एक दूसरे को जल्दी-जल्दी गुडनाइट किया और कॉलोनी में जलते बल्ब के सहारे अपने-अपने घरों में घुस गये. साथ ही डील पक्की करने वाले ने भी अपनी डील पक्की कर ली और गर्मी और पसीने के बाद भी, खिलखिलाता-सा लौट गया.

घर पहुंच कर डॉक्टर साहब ने भी भरपेट खाना खाकर बच्चों को चूमते हुए गुडनाइट कहा और जिम से छरहरी हुई पत्नी को दुलारते कमरे का दरवाज़ा बंद कर लिया.

'किट्टी कैसी रही तुम्हारी आज?'

'ग्रेट. सभी मेरे प्लेटिनम हार को पूछ....'

घंटी बजी. वाक्य छूट गया.

'हां. बोलो शिवा?'

'सर वह रोहित का पेशेन्ट'

'पहचानता हूं. आगे बोलो' – डॉ. विनय गुर्राया.

'उनके पेशेन्ट की हालत बहुत खराब है सर. मैं नहीं संभाल पा रहा हूं. आप आ जाते तो....'

'शिवा! पंद्रह सालों से तुम्हें इसीलिए ट्रेंड कर रहा हूं? इसीलिए तुम्हें डॉक्टर बना कर तुम्हारा केबिन बनाया है कि तुम बार-बार फोन करके मुझे परेशान करोगे?'

'कहां है रोहित....'

'सर अपने पेशेंट के पास. रूम में.'

'तो सुनो! रात किसी तरह सम्भालो. मैं बहुत थक चुका हूं. और हां. उनको कहना कि डॉ. साहब ऑपरेशन से तो निकल चुके हैं पर जाम में फंसे हैं. समझे? आगे फोन नहीं करना. धीरे-धीरे गुर्राते डॉ. विनय ने रिसिवर पटक दिया.'

'क्या हुआ?'

'कुछ नहीं.' डॉ. विनय की आंखों में, तन्वंगी पत्नी को सफेद नाइटी में देखकर, कई सारे मृत दीये जल उठे. उन्होंने हाथ बढ़ा कर मेज पर रखे लैंप को बुझा दिया.

श्यामलाल का शोर, जलती मोमबत्तियों की मशाल सब अंधेरे में खो गये.

❑

आयाम

दो जमा दो बराबर पांच

● बाबक अनवरी

'एनिमल फार्म' और '1984' जैसे विश्व-विख्यात उपन्यासों के लेखक जार्ज आरवेल ने नाज़ीवाद का विश्लेषण करते हुए अपने एक लेख में लिखा था कि नाज़ीवाद किसी सचाई के अस्तित्व से भी इनकार कर सकता है. उनके अनुसार नाज़ीवादी विचार का शासक वर्तमान, भविष्य और अतीत तीनों को अपने नियंत्रण में रखने में विश्वास करता है. ऐसा नेता जो कहे वह पत्थर की लकीर होता है. वह जब चाहे किसी भी सच को झूठ और किसी भी झूठ को सच घोषित कर सकता है. जॉर्ज आरवेल ने लिखा था, 'यदि नेता कहता है कि दो जमा दो पांच होता है, तो दो जमा दो पांच ही होता है.' बात यहीं खत्म नहीं होती, जनता को यह मानना भी पड़ता है कि दो जमा दो पांच होते हैं.

ईरानी फिल्मकार बाबक अनवरी ने शायद इसी बात को आधार बनाकर एक छोटी-सी फिल्म बनायी थी, सिर्फ सात मिनट की लगभग एक दशक पहले बनी इस फिल्म में इसी नाज़ीवादी सोच को उद्घाटित किया गया है. अनवरी का मानना है कि सत्ता के मनमाने व्यवहार और अविवेकी रवैये को सामने लाना ज़रूरी है, ताकि नेतृत्व के तानाशाही सोच और उसके परिणामों को सामने लाया जा सके. उनकी छोटी-सी फिल्म का यह दृश्य अपने आप में बहुत कुछ कह देता है.

शुरूआत स्कूल के हेडमास्टर की घोषणा से होती है. वह स्कूल की दिनचर्या में किये गये कुछ परिवर्तनों के बारे में छात्रों को बताते हुए कहता है कि इन

परिवर्तनों के अनुसार व्यवहार करके अपना और अपने स्कूल का नाम चमका सकते हैं. फिर बच्चों से आग्रह किया जाता है कि वे इस बारे में उनकी कक्षा के अध्यापकों की बात गौर से सुनें और उनका पालन करें.

आगे क्या होता है वह फिल्म में इस तरह दिखाया गया है–

अध्यापक – खामोश... शोर नहीं. आज का पहला पाठ है दो जमा दो बराबर पांच. अब तुम सब दुहराओ जो मैं कह रहा हूं– दो जमा दो बराबर पांच.

(बच्चे दुहराते हैं.)

अध्यापक – बोलो, दो जमा दो कितने हुए?

बच्चे – पांच

अध्यापक – और ज़ोर से बोलो, दो जमा दो कितने हुए?

बच्चे – (ज़ोर से) पांच

अध्यापक – एक बार फिर बोलो

बच्चे – पांच!

(एक लड़का खड़ा होता है)

बच्चा – पर सर, दो जमा दो तो चार होता है.

अध्यापक – होता था. मैंने बताया न, अब पांच होता है. इस बारे में अपना दिमाग लगाने की कोई ज़रूरत नहीं. बात समझ में आयी कि नहीं? आकर समझाऊं?

बच्चा – आ गयी सर समझ में. मैंने सोचा...

अध्यापक – किसने कहा तुम्हें सोचने के लिए? मैंने बताया न दो जमा दो पांच होते हैं. होते हैं तो होते हैं, बस! यही सच है. कुछ बोलने की ज़रूरत नहीं. मुंह पर ताला लगालो... अब अपनी कापियां निकालो और जो मैंने बोर्ड पर लिखा है, नोट करलो– दो जमा दो बराबर पांच.

एक बच्चा (खड़ा होकर) सर दो और दो का जोड़ चार होता है. हमेशा से चार ही होता है. पांच कैसे हो सकता है?

अध्यापक – मैंने कहा न, पांच होता है. मुंह खोलने की इजाज़त तुम्हें किसने दी? तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई मुझसे सवाल करने की?

बच्चा – सर, लेकिन...

अध्यापक – लेकिन वेकिन कुछ नहीं. बोलो, दो जमा दो बराबर पांच. जो मैं कह रहा हूं वही बोलो, और कुछ बोलने की ज़रूरत नहीं.

बच्चा – पर...

अध्यापक – फिर पर? मैंने कहा न! तुम्हें सिर्फ दुहराना है, जो मैं कहूं. समझे?

बच्चा – पर, सर, दो और दो चार ही होता है. (अन्य बच्चों की तरफ मुंह करके) सही कह रहा हूं न मैं... तुम सबका क्या कहना है?

अध्यापक – चलो, इधर आओ, तुम मेरे सामने.

बच्चा – (बाकी बच्चों से) तुम सब जानते हो दो और दो चार होते हैं, फिर बोलते

क्यों नहीं? चुप क्यों हो?

अध्यापक – चुप रहो सब! यहीं बैठे रहना, अपनी-अपनी जगह पर. मैं अभी आया.

(अध्यापक यह कह कर तेज़ी से कक्षा से बाहर चला जाता है.)

एक बच्चा – तुम बात समझते क्यों नहीं? सबको मुसीबत में डालोगे...

दूसरा बच्चा – दिख नहीं रहा तुम्हें... सर कितने गुस्से में बाहर गये हैं... आज तुम्हारी खैर नहीं.

(अध्यापक पहलवाननुमा तीन-चार लोगों के साथ लौटता है और उस बच्चे की तरफ इशारा करता है जो दो और दो का जोड़ चार बताने पर अड़ा हुआ था.)

अध्यापक – यह लड़का अपने आप को बहुत होशियार समझता है (कक्षा से. अब बोलो सब दो जमा दो पांच होता है कि नहीं?:)

बच्चा – सर दो और दो का जोड़ चार ही होता है.

(अध्यापक की बात न मानने और दो जमा दो को चार कहने की ज़िद पर अड़े बच्चे को पहलवाननुमा लोगों में से एक सबके सामने गोली मार देता है. खून के छींटें ब्लैक बोर्ड पर पड़ते हैं, जहां उस बच्चे ने दो जमा दो के आगे चार लिख दिया था. अध्यापक खून सहित उस लिखे हुए को मिटा देता है और फिर से लिखता है– दो जमा दो बराबर पांच!)

सब बच्चे अध्यापक के कहने पर दुहराते हैं दो जमा दो बराबर पांच. टीचर खुश हो जाता है. बच्चों से कहता है अब वे अपनी कापी में यह लिख लें. एक लड़का अपनी कापी में दो जमा दो बराबर पांच लिखकर, कुछ क्षण बाद, पांच को काट कर चार कर देता है! ❑

जीतने की खुशी नहीं

एक मशहूर ईरानी फिल्म का सीन है कि भाई-बहन के पास स्कूल जाने के लिए एक ही जूते का जोड़ा है. उसे वे बारी-बारी से बदल-बदलकर पहनते हैं. जूता काफी जीर्ण हो चुका है. तभी पता चलता है कि स्कूल में मैराथन का आयोजन हो रहा है. जीतने वाले को साइकिल और दूसरे स्थान पर आने वाले को एक जोड़ी जूते मिलेंगे. बच्चा अपनी बहन को जूते दिलाने के लिए मैराथन में हिस्सा लेता है. वह तय करता है कि मैराथन में सेकेंड आयेगा और जूते जीत लेगा. अंत में जब वह दौड़ते-दौड़ते काफी थक जाता है तो उसे ख्याल आता है कि वह हार जाएगा और बहन को जूते नहीं मिल पायेंगे. इस ख्याल से वह इतना डर जाता है कि इतनी तेज दौड़ लगाता है कि फर्स्ट आ जाता है. जीतने के बाद उसे साइकिल दी जाती है, लेकिन उसकी आखें आसुओं से भरी हुई हैं, जीतने की खुशी नहीं है. फिल्म यहीं समाप्त हो जाती है.

ताबूत के शहर में

● अनिल जोशी

ताबूत के शहर में मैं पालना बेचने आया हूं
सुख के धागों से बुनी दुख की चदरिया बेचने आया हूं
खिलौना बेचने आया हूं

शहर की सभी सांसें हवा बन गयी
बलून में फूक से भरी हुई सांसें बेचने आया हूं
थोड़ी-सी मासूमियत बेचने आया हूं
हवा नयी-नयी सांसें ढूंढ़ रही है
और सब लोग अपनी नाक ढूंढ़ रहे हैं

शायद ताबूत के शहर में कोई बच्चा मुझे मिल जाए
कष्ट उठाने का सुख लेके आया हूं
हवा तेज़ बहती है
इंसान हवामहल बन गया है

हवामहल के दस दरवाज़े
ना जाने कौन-सी खिड़की खुली थी
सैया निकस गये, मैं ना लड़ी थी
ताबूत के शहर में पालना बेचने आया हूं
सुख के धागों से बुनी दुख की चदरिया बेचने आया हूं

धारावाहिक उपन्यास

(बारहवीं किस्त)

योगी अरविंद

● राजेंद्र मोहन भटनागर

तब अरविंद ओल्ड गेस्ट हाउस में आ चुके थे, जिसे अब 'दोरत्वार एनेक्स' नाम से जाना जाता है. यहां उनके साथियों में दो नये प्राणी और जुड़ गये थे– उनमें से एक था विजय नाग का रिश्तेदार नरेन नाग जो क्षय रोग से पीड़ित था और हवा-पानी बदलने, स्वस्थ जलवायु का सेवन करने तथा यौगिक क्रियाओं से लाभ लेने के लिए वहां आया था. उसके साथ था– वीरेन राय. वीरेन राय उसका बावर्ची भी था.

धीरे-धीरे वीरेन राय उस परिवार का एक सक्रिय तथा विश्वसनीय सदस्य बन गया. प्राय: वही बाज़ार से सामान खरीदकर लाता था, खाना बनाता था और परोपकारी करता था. रसोई की सारी चिंता उसकी थी. विजय नाग ने कहा था, 'आरो दा, वीरेन राय मेरा निकट का रिश्तेदार ज़रूर है परंतु वह क्षय का रोगी है.'

'तुम्हारा मतलब है नाग कि वह छूत का रोगी है.'

'हां, आरो दा. छूत की बीमारी किसी को लपेटे में ले सकती है. उसके रहने की व्यवस्था दूसरी जगह भी हो सकती है.'

'तुम कितने दिनों से साथ हो तो क्या तुमने कोई भेद की दीवार यहां किसी प्रकार के भेदभाव का अनुभव किया?'

'नहीं! कभी नहीं. ...विजय नाग ने तपाक से ऐसा कहा जैसे उसकी उंगली ने गलती से जलते कोयले को छू

लिया हो.'

'तो फिर नरेन नाग यहां, हमारे बीच में क्यों नहीं रह सकता है? वह और उसका नौकर हमारे साथ रहेंगे.' अरविंद ने उठ खड़े हुए.

समय बीत गया. नरेन नाग को लाभ भी होता अनुभव हुआ. सारी व्यवस्था सुचारू रूप से चल रही थी. अब पता नहीं चलता था कि हममें से कोई बाहर का विजातीय तत्त्व भी है. अरविंद ने नरेन को समझाया था कि वह अपने को रोगी नहीं समझे. ईश्वर का ध्यान करे, सुबह-शाम समुद्र के तट पर घूमने जाए और प्रतिदिन अनुभव करे कि वह पहले से ठीक हो रहा है.

नरेन नाग ने अरविंद की बात का अनुकरण किया. उसे उससे संतोष मिला. एक बार अरविंद ने उसे समझाया था, 'नरेन, पहले मन बीमार होता है, तब तन. स्वामी विवेकानंद ने भी कहा था आचरणहीनता, चरित्रहीनता, अपराधीकरण आदि बुराइयां ऊपर से आती हैं; नीचे से नहीं. मन देह को बीमार करता है. इस कारण तुम मन को स्वस्थ बनाये रखने की चेष्टा करो.' यह बात उसके दिल की गहराइयों में उतर गयी थी.

विजय नाग ने एक बार मणि चक्रवर्ती से कहा था, 'तुम वीरेन राय पर निगाह रखना.'

'क्यों, क्या कोई खास बात नोट की है?'

'नहीं.'

'तो फिर?'

'मेरा मन कहता है कि वीरेन राय जैसा दिखता है, वैसा है नहीं.'

'परसों ही तो आरो दा ने कहा था कि किसी को भी संशय की दृष्टि से मत देखो– अपने शत्रु को भी नहीं क्योंकि सत्पुरुष का कोई शत्रु नहीं होता. जैसे सूर्य की किरणें पहले गंदगी दूर करती हैं, बाद में मंदिर-मस्जिद चर्च चमकाती हैं. क्या तुम इतनी जल्दी भूल गया.' मणि चक्रवर्ती ने सब्जी काटते हुए कहा.

तीसरे दिन का दृश्य अपने आप में हंसा-हंसाकर लोट-पोट करने वाला था. मणि चक्रवर्ती ने सिर मुड़वा लिया था. विजय नाग को मस्ती सूझी, उसने पूछा, 'क्या कोई खास बात है?'

मणि चक्रवर्ती कुछ उत्तर देता कि उससे पूर्व वीरेन राय ने प्रवेश किया. सिर उसका भी मुड़ा हुआ था. विजय नाग ने हैरत से पूछा, 'क्या सरकार वर्जित क्षेत्र में प्रवेश करने वालों पर कोई जुर्माना कर रही है.'

'यह आपसे किसने कहा?' वीरेन राय ने पूछा.

'और कौन कहता तुम दोनों के अलावा.'

मणि चक्रवर्ती और वीरेन राय ने एक-दूसरे की तरफ देखकर जानना चाहा कि

यह क्या माजरा है. दोनों ने सिर हिलाकर इंगित से यह बताया कि वे इस सम्बंध में कुछ नहीं जानते.

'चक्कर में क्यों पड़ रहे हो, भाई. सारी हकीकत सामने है. तुम दोनों ने आगे-पीछे से एक ही दिशा से प्रवेश किया है और दोनों के सिर मुड़े हुए हैं. जब वहां से गये थे तो सिर पर खासी खेती थी.'

मणि चक्रवर्ती कुछ नहीं सोच पा रहा था. वह यह सोचकर सहम रहा था कि वह अरविंद को इस प्रश्न का क्या उत्तर देगा? उसके पास कोई उत्तर भी नहीं था, यह उसने अजीब पागलपन किया और वह भी वीरेन राय के लाख समझाने पर. उसने कितना रोकना चाहा था! कितना समझाया था. पर उसने एक नहीं सुनी और लगे हाथ सारे सिर पर उस्तरा फिरवा लिया और एकदम गंजा हो गया.

वह तो अच्छा रहा कि अरविंद ने इस सम्बंध में उससे कोई प्रश्न नहीं किया. वह दो दिन तक अपनी इस मूर्खता पर सोचता रहा. आईने के सामने, सबसे बचकर, अपने आपको निहारता रहा. उसका चेहरा एकदम बदल गया था. उसे अपना वह चेहरा अच्छा नहीं लग रहा था. उससे उसे बड़ी खीझ हो रही थी. उसी दिन तो अरविंद ने उन्हें समझाया था कि स्थिर रहो. अपने आपको अनासक्त बनाकर के साक्षी की तरह अवलोकन करने का प्रयास करो, आवेग और आवेश में आकर क्रिया करने की समस्त सम्भावनाओं को रोकने का प्रयत्न करो. ...प्रतिदिन तुम जो कुछ करते हो, उसे और अच्छा करने कि दिशा में प्रयत्न कर सकते हो. परंतु नकल मत करो– किसी की भी नहीं, श्रेष्ठ और महान् व्यक्ति की भी नहीं.

विजय नाग ने कहा, 'आपकी भी नहीं.'

'हां, मेरी भी नहीं.'

'क्यों, आरो दा?'

अरविंद कुछ देर तक सोचते रहे. फिर वे कहने लगे, 'तब मैं बडौदा में प्रोफेसर था, मेरा एक ओल्ड स्टूडेण्ट पाटकर था. वह वहीं एडवोकेट हो गया. वह एक दिन मेरे पास आया और कहने लगा, 'सर, मैं अपनी अंग्रेज़ी सुधारना चाहता हूं.'

'क्या कुछ सोचा है?'

'हां, मैं मैकाले का अध्ययन करना चाहता हूं, सर? ...आपकी क्या राय है?'

मैंने तनिक सोचकर पाटकर की ओर ध्यान से देखा और कुछ पल बीत जाने पर कहा, 'पाटकर, क्या हम कभी आज़ाद नहीं हो सकेंगे?'

'क्यों, सर? क्यों नहीं होंगे!'

'हमने पढ़ाते हुए कितनी बार समझाया होगा कि हर पढ़े-लिखे का आवश्यक कर्तव्य है कि वह निरक्षरों को पढ़ाये और उन्हें स्वतंत्र सोचने की प्रेरणा दे. लेकिन यहां तो उल्टा हो रहा है, पाटकर. काश, अपनी सरकार होती तो हर उपाधि पाने

के हकदार के लिए यह अनिवार्य कर देती कि वह कम-से-कम दस जनों को पढ़ाये. यदि वह ऐसा नहीं करता है तो वह देशद्रोही है. परंतु किसी ने इस ओर ध्यान नहीं दिया. सब अपने में केंद्रित होकर रह गये.'

पर मैं तो अपनी अंग्रेज़ी को सुधारने के लिए मैकाले की पुस्तकों का अध्ययन करना चाहता हूं.

'मैंने कहा नहीं कि किसी के गुलाम मत बनो. मैकाले की नकल करने से तुम उस जैसे लेखक नहीं बन सकोगे. हो सकता है तुम उसकी हास्यास्पद नकल बनकर रह जाओ. तुम्हें स्वयं अपना स्वामी बनना चाहिए. स्वयं की शैली बनानी चाहिए. ...यही बात मैं आप लोगों को समझाना चाहता हूं कि तुम भी इस दिशा में स्वयं आगे बढ़ो.'

मणि चक्रवर्ती अपने पर नाराज़ हो उठा. वह इस कान से सुनता है, उस कान से निकाल देता है. गुनता कुछ नहीं है. उसने पश्चात्ताप से घिरकर अंदर प्रवेश किया. अंदर बीचोंबीच अरविंद बैठे हुए थे. कदाचित् उसी की वहां कमी रह गयी थी. विजय नाग को मणि की घुट-मुंडी चांद को देखकर ऐसा लगता था कि कोई अनजाना घुन्ना सामने से गुजर रहा है. वह अपनी हंसी को अंदर-ही-अंदर रोककर अपना ध्यान कहीं और केंद्रित कर लेता था. मणि का ध्यान न चाहते हुए भी उसकी तरफ चला जाता था और उसे लगता था कि वह उस पर व्यंग्य कस रहा है कोई भद्दा-सा बेडौल.

अचानक आसमान फट पड़ा. वीरेन राय खड़ा हुआ था. वह कह रहा था, 'मुझे कुछ बताना है.'

'वह तुम बैठकर भी बता सकते हो. इस वक्त तुम आवेग में हो. आवेग की आंधी गुजर जाने दो. बैठने से आवेग को शांति मिलने लगती है.'

'क्षमा कीजिए, गुरुदेव, मुझे खड़े होकर ही कहने दीजिए, आपकी बड़ी कृपा होगी.'

'जैसी तुम्हारी इच्छा, राय. ...पर बेहतर यह हो कि तुम तूफान को इस वक्त गुजर जाने दो. तूफान में बाहर निकलना ठीक नहीं होता.'

'मेरी करबद्ध विनती है, गुरुदेव, कि मुझे खड़े होकर ही कहने दीजिए.'

'तो कहो, भाई.'

'शायद हममें से कोई नहीं जानता कि मैं कौन हूं?'

'मैं जानता हूं तुम्हें.' नरेन नाग ने तत्काल कहा, 'तुम्हें मेरे पिताजी जानते हैं. उन्होंने तुम्हें मेरे साथ इसलिए भेजा कि तुम सेवक के साथ पाक-शास्त्र में दक्ष हो.'

'बेशक यह सत्य है लेकिन यह भी सत्य है कि आप पांडिचेरी में गुरुदेव के पास आ रहे थे.'

'तो इस से क्या हुआ?'

'इसी से सब कुछ हुआ, मैंने दोहरा पगार लिया. मैं जासूस हूं. आप यकीन नहीं करेंगे, क्योंकि मैं सत्य बोल रहा हूं कि मैं ब्रिटिश पुलिस का जासूस हूं और यहां मैं गुरुदेव की जासूसी करने आया था.'

'यह सब अब क्यों बता रहे हो?' विजय नाग ने ज़ोर देकर पूछा, 'इसके पीछे तुम्हारा क्या लक्ष्य है?'

'कोई नहीं, नाग मोशाय. जो सच है, वह कह दिया है और प्रमाण के रूप में ये एक सौ रुपए का नोट प्रस्तुत है. इतनी बड़ी रकम मेरे पास कहां से आयी, यही क्या मेरी बात का प्रमाण नहीं है.'

'नहीं है, कहें तो?'

'तो क्या? मैंने सिर मुंडवाया.'

'इससे क्या हुआ! सिर मुंडन तो मणि ने भी करवाया है.'

'यही तो अपशकुन हो गया. अब एक नहीं दो-दो जासूस हो गये.'

'दो कैसे?'

'एक मैं और दूसरे मणि क्योंकि हम दो सिर मुंडे हो गये हैं. अब ब्रिटिश पुलिस या उसके अन्य गुप्तचर यह कैसे पहचानेंगे कि उनके लिए हम दोनों में से कौन व्यक्ति काम कर रहे हैं?' वे मुंडे हुए सिर वाले को अपना आदमी मानते हैं. अब किसको मानेंगे? नाश, सवा सत्यानाश!... लेकिन मैं गुरुदेव के चरणों की सौगंध खाकर कहता हूं कि भविष्य में मैं यह काम कभी नहीं करूंगा. मैंने गुरुदेव के चरणों में बैठकर ज़िंदगी को पहली बार एक नये तथा सबल रूप में देखा है. आप सब लोग मुझे इस नीच काम के लिए क्षमा कर दें, यही मेरी आपसे प्रार्थना है.

अब सब सन्नाटे में थे. वीरेन राय अरविंद के चरणों में गिर पड़ा था.

वातावरण क्रोधावेश से सुलग उठा था. विजय नाग को बहुत गुस्सा आ रहा था. गुस्सा तो मणि चक्रवर्ती को भी आ रहा था कि वह इतना भी नहीं पहचान पाया कि शत्रु उनके साथ रह रहा है. अरविंद ने स्थिति को गर्म होते देखकर कहा, 'कोई बात नहीं, राय. तुम यहां किसी भी कारण से आये हो उससे कोई फर्क नहीं पड़ता. सुनता हूं, फ्रेंच सरकार भी हमारे प्रति कुछ करना चाहती है. हम जानते हैं, कोई कुछ चाहे, उससे हमें कुछ लेना-देना नहीं है और न किसी से भय-आशंका है. आप सबको भी अपने-अपने मन से प्रतिकूल भावों को निकाल देना चाहिए.' अरविंद ने कुछ रुककर सामने, दीवार के पार देखा, फिर खंखारकर कहा, 'स्मरण रहे, विपरीत परिस्थितियां, विघ्न-बाधाएं, विरोधों-अवरोधों इत्यादि से हर वस्तु तुम्हारे पथ को प्रशस्त करेगी. जो नदी जितने अधिक मोड़ों से गुजरती है, उन सब मोड़ों से उसकी गति अति तीव्र हो जाती है. यदि तुम्हारे अंदर सत्य चेतना है तो तुम्हारी अंत:बहिर प्रगति को न पर्वत रोक सकता

है और न समंदर. ...राय, तुम भी अपने अंदर से वे सब बातें निकाल दो, जिनसे तुम्हें पीड़ा हो रही है. पुन: ऐसी पुनरावृत्ति न हो, इसके लिए मन पक्का बनाओ. ...अब तुम जाओ, आराम करो, निर्भय होकर रहो.'

> आपके लिए किये गये सभी कार्य संगीत-कविता-कला आदि से लेकर रसोई अथवा झाड़ू लगाने का काम हो, और भी छोटे-से-छोटा काम हो, हम गद्‌गद होकर करते जा रहे हैं.

वीरेन राय धीमे कदमों से चल पड़ा, सिर नीचा किये, लज्जा से निगाहें झुकाये और उन्मना होकर.

उसके जाने के बाद चक्रवर्ती मणि ने पश्चात्ताप भरे स्वर में कहा, 'हमारे लिए यह शर्म की बात है कि हमने बिना सोचे अपरिचित को अपना साथी बना लिया. मैं ही उसके साथ अधिक घुल-मिल गया था. तब भी मैं यह नहीं जान सका कि...

'मणि, चुप हो जाओ. इससे दुखी होने का कोई कारण नहीं है. जैसे हम दुर्गंध से सौ कोस दूर रहना चाहते हैं परंतु होती वह भी काम की है बशर्ते हमें उसका प्रयोग करना आता हो. ठीक वैसे हमें राय के बारे में सोच-सोचकर अपने मन को मैला नहीं करना है. जो व्यक्ति प्रवीण होते हैं, वे उसका खाद बनाकर प्रयोग करते हैं.'

'परंतु, आरो दा, हमसे गहरी चूक हुई है.' विजय नाग अफसोस जताता.

'दूसरी बार वह भूल न हो, यही तुम्हारे दक्ष होने का लक्षण है. मुझे आशा है कि राय के प्रति तुम लोगों का व्यवहार पहले की तरह होगा.' अब मैं ध्यान लगाऊंगा. अरविंद ने धीरे-से कहा.

वे तीनों चुपचाप चल पड़े. हल्की-सी उदासी का लेबल उनके चेहरे पर चस्पां था. गति उनकी खामोश थी. अरविंद अपने स्थान पर आ विराजे. आज उनका मन हुआ कि वे ईश्वर से प्रार्थना करें, ताकि उनके सम्पर्क में आकर उन लोगों का अपना नुकसान न हो, जो लोग विघ्न-बाधा आने पर प्रतिक्रियावादी हो जाते हैं. मानो वे तीनों आज कुछ-कुछ नाखुश हुए अपने को कोस रहे हों. अरविंद आंख खोले प्रार्थना कर उठे. इस सारी दीन-दुनिया के खैर-ख्वाह, जगत् पालक, जगत्रक्षक, तू उनको नेक मार्ग दिखा. उनके मन से रहस्यों का मायावी पर्दा उठा ताकि वे सहज तथा पारदर्शी जीवन जी सकें.

उस समय वहां कोई नहीं था, फिर भी उन्हें लग रहा था कि वहां कोई है. कौन है? कोई भी हो लेकिन इतना सत्य है कि वे तीनों आज बहुत दुखी थे, संताप भरे थे और पश्चात्ताप कर रहे थे. इसी कारण वे परस्पर बात नहीं कर रहे थे. वे साथ

चलते हुए भी अपने आपको घने निर्जन में अकेला अनुभव कर रहे थे.

आज लगभग पूरी रात अरविंद की ध्यान में बीती. वे योग मुद्रा में रहे. सुबह हुई. वह पहली जैसी सुबह नहीं थी. सन्नाटा अवश्य था परंतु अपराध से घिरा हुआ. यह सन्नाटा टूटना चाहिए. उन्होंने सबको बुलाया. नाश्ते में क्या होगा, यह समझाया. दोपहर के खाने में खीर का प्रस्ताव रखा. आज सब कुछ अप्रत्याशित हो रहा था. कोई प्रत्युदाहरण सामने नहीं आ रहा था. न किसी से प्रत्याख्यान हो रहा था. फिर भी, प्रत्यारम्भ प्रदग्ध-सा अनुभव हो रहा था.

तीस रुपए. उनके लेखन का पारिश्रमिक था जो फ्रेंच कमाण्डेंट ने भिजवाया था और कलकत्ते से भी सवा सौ रुपए मिश्राजी ने भिजवाये थे. वह रुपया उन्होंने मणि को सौंपते हुए कहा था, 'क्या हमें इन छोटी-छोटी बातों को लेकर इतना गुमसुम होना चाहिए कि परस्पर अपरिचित-सा व्यवहार उन लोगों के बीचे में शुरू हो जाए जो कई वर्षों से साथ रह रहे हैं और जिनके बीच गहरी आत्मीयता की समझ सदैव सक्रिय बनी रही थी. हमारे जीवन में उद्वेग, व्यग्रता, तनाव और बेचैनी अशांति लाते हैं. असोचा और अप्रिय जब घटता है तब मन टूटता-बिखरता है. पहले मन शांत हो ताकि वह शांति प्राण और कोषों में उतरने लगे. इसलिए ऐसे विचारों से पल्ला झाड़ो जो उत्तेजना पैदा कर रहे हैं. श्रद्धा रखो. आत्मविश्वास बनाये रखो और मेरे साथ प्रभु से कहो, तुम सब कहो–

'प्रभु, आपका आभार कि हम सब आपकी परीक्षा में पास हो गये. हमें आपने पूर्ण प्रकाश, समग्र प्रेम और सहज आनंद से विचलित नहीं होने दिया. आज हम एक नयी सुबह से, स्वस्थ चित्त से, पूर्ण समर्पण के साथ आपके आनंदमय पथ की ओर चलने का अनुभव कर रहे हैं.'

आपके लिए किये गये सभी कार्य संगीत-कविता-कला आदि से लेकर रसोई अथवा झाड़ू लगाने का काम हो, और भी छोटे-से-छोटा काम हो, हम गद्गद होकर करते जा रहे हैं. आज की रसोई आपके लिए है, हम सब आज आपको अपने बीच रसोई जीमते रहने का अलौकिक आनंद लेना चाहते हैं, कृपया हमारी प्रार्थना स्वीकार करें.

हम अनुभव कर रहे हैं कि आपने हमारा निमंत्रण मान लिया है और हम सब उठकर स्वच्छता से, संयोजन-सम्पादन से, सुंदरता से, पूर्ण श्रद्धा भक्ति से अपने-अपने कामों में जुट गये हैं प्रभु!

कुछ पल तक प्रकाशमय आनंद की गहरी अनुभूति में बीते ही थे कि अरविंद ने पुन: कहा, 'हम सबने प्रभु को निमंत्रण दे डाला है और हमारे बीच प्रभु आने वाले हैं, लेकिन हम प्रभु से किये वादे से दूर अभी तक अपनी-अपनी खोल में बैठे हुए

हैं. क्या अतिथि-सम्मान धर्म का हमें ऐसे पालन करना चाहिए?

'नहीं...नहीं...नहीं.' समवेत स्वर था. सब आनन-फानन में उठ खड़े हुए. अरविंद भी उठे और बोले, 'आज मैं अपने प्रभु के लिए घर-आंगन में झाड़ू-पोंछा लगाऊंगा.'

'आप, आरो दा, आप!'

'इसका अर्थ है कि आज प्रभु भी मेरे इस भजन-कीर्तन, सफाई-स्वच्छता को अवलोक कर सीता रसोई का भरपूर आनंद लेंगे.'

अब क्या था कि सब अपने-अपने कामों में जुट गये. अरविंद ने झाड़ू सम्भाली, मन-ही-मन प्रभु आगमन के लिए कुछ गुनगुनाया ताकि उनका कार्य संगीत की मधुर धुन पर ऐसा थिरक उठे कि फिर वहां संगीत के अलावा कुछ और न रहे. सब संगीतमय हो जाए, सब पूजामय हो जाए और सब उसके प्रकाश में ऐसा लयबद्ध हो जाए कि वह नहीं रहे, मात्र उसका प्रकाश-आनंद रहे और उसकी अंतर्गति तथा आत्मीय लय रहे– झाड़ू सितार हो जाए, कविता बन जाए, कला शिल्प बन जाए, और पोंछा उसकी द्युति की दिव्य चमक बन जाए. यों उनका सफाई-स्वच्छता अभियान स्वत: प्रारम्भ हो गया अंतरंगता के अनुस्वार अनुस्यूत पुलक के नन्हे सरगम पर, अति मंथर गति से, गहरे प्यार के समग्र समर्पण से.

●●●

सत्य आ रहा है पूर्ण अलौकिक प्रकाश के साथ, समग्र संगीत की अंतर्ध्वनियों को लिए, धीरे-धीरे और समूचे समर्पण की अंत:लय पर अपने अति कोमल चरणों से नवमेदिनी के हृदय का स्पर्श करते हुए.

एक प्रकार की अचंचल सुबह, थमे स्वर के समंदर को लिये, मूक स्वर में, अज्ञात लोक से आयी चिड़ियों के नन्हे-नन्हे इंद्रधनुषीय पंख खोले और समस्त नंदन वन-उपवन की मलयजी सुरभि के अनगिनत किसलय-सुमन जैसे नवल-नवल वसंत लिये.

अरविंद नहीं समझ पा रहे थे कि कोयल क्यों कूक उठी है. पपीहा क्यों पीऊ-पीऊ कर उठा है? क्यों वर्षा पूर्व की महक आंचल के छंद-पर-छंद खोले अपने आगमन की ठुमक अनुभूति को ठसक के साथ महका उठी है? क्यों पुरवइया पुनश्चरण के बंध लिये नूपुरों के संयमित आह्लाद भरती, मोदों पर प्रमोद के गुलाल मलती जा रही है? शस्य मंजरी का शृंगार किये, सीधे याम्योत्तर रेखा के सैलानी चित्त की थिरकन पर लास्य का रूप भरती क्यों वह शीत सावन के झूलों पर पेंग भरती आ रही है?

मिट रहा चित्त तमस. चिर उष्णता और चित्त ऊर्जा और भौतिक, मानसिक,

अतिचेतन और प्राणिक स्फुरण क्यों संग्रथित होकर आनंद के पर्व पर पर्व सोत्साह, सोल्लास तथा सतरंग उमंगित कर उठा है? दुधमुंहे शिशुओं का कलगान प्राणिक स्पंद और सात चादरों से उन्मुक्त सहस्र-सहस्र शतदल का अनाहत नाद क्यों अनुगूंज उठा बिना स्वर व्यंजन की सरगम के?

'तुम यहीं आये थे, चार वर्ष पहले. ...यही वही पांडिचेरी है, जहां तुमने ऋषितुल्य साधक संत योगी से भेंट की थी और जिसकी चर्चा अनेक बार अनेक सत् धर्म और चित्तवृत्तियों से की थी.'

'हां प्रिय, यह वही पांडिचेरी है, जिसके सम्बंध में तुमने अनेक बार आग्रह किया था.' पॉल रिचर्ड ने छत की ओर देखते हुए कहा.

'मुझे यहां अद्‌भुत आत्मीय अनुभूति हो रही है, पॉल.'

'होनी भी चाहिए, क्योंकि तुम कदाचित् इसी मन-चित्त धर्म की जिज्ञासा के सुमन संजोये यहां आयी हो. मिसेज़ मीरा आल्फासा.' पॉल रिचर्ड ने कुछ रुककर धीरे-से आगे कहा, 'आज, प्रिय, तुम उनसे मिल रही हो, जिनकी कल्पना तुम्हें चार वर्ष से थी. हो सकता है उससे भी पहले से, जैसा तुमने मुझे बताया था, चित्र बनाती रही हो. मैं भी यह मिलन बहुत उत्सुकता से देखने का आकांक्षी हूं, प्रिय.'

'क्यों पॉल, इसमें ऐसी क्या बात है?'

'क्योंकि मैं बड़ी बेसब्री से उस शांत और चिर प्रतीक्षित लम्हों की कल्पना को अपने ढंग से संजो रहा हूं और बिगाड़ रहा हूं– ठीक उस नटखट बालक की तरह जो नद् के तट पर अपने छोटे-छोटे हाथों से घर बनाता और बिखेरता रहता है, क्योंकि उसके लिए बनना, बिगड़ना एक ही लय-संगीत के अंत:धर्म हैं?'

'मैं कह नहीं सकती कि तुम्हारे द्वारा प्रस्तुत रेखांकन वाली दिव्यालंकृत आकृति वही है, जिसे मैं स्वप्न तथा दिवा-स्वप्नों में देखा करती हूं और गहराई से अनुभव करती हूं. ...फिर भी, मुझे विश्वास हो रहा है कि हम निराश नहीं होंगे.' मीरा आल्फासा सहज कह जाती.

'तुमने इससे पहले कभी भारत नहीं देखा है और न कभी उसके बारे में पढ़ा है. फिर भी तुम अपनी अदृश्य तूलिका से उसके चित्र उभारती रहती हो. पता नहीं तुम्हारे साथ ऐसा क्यों हो रहा है?'

'शायद बाद में इसका रहस्य सामने आ सके. इसके लिए हमें जल्दीबाजी नहीं करनी चाहिए. मैं अपने स्वप्नों के प्रति तनिक शंकालु नहीं हूं. ज़रा सोचो तो मेरी मम्मी मातिल्ह इसमालुन काहिरा से फ्रांस आयी थीं और मेरे पापा मोदिस आल्फासा तुर्क बेंकर से. वे दोनों मेरे जन्म से एक वर्ष ही पहले यहां आये थे, पॉल रिचर्ड. मैं चारेक वर्ष की रही होऊंगी तब मेरे में अद्‌भुत परिवर्तन होने लगे थे. मैं नहीं जानती थी कि ऐसा क्यों हो रहा है? मुझमें कोई

शक्ति प्रवेश कर रही है. वह मुझे सारी बाह्य इयत्ताओं से आगे निकालकर कहीं और ले जाना चाहती है. ...मेरे इस परिवर्तन के कारण ही मैंने ऑरो मोरिससे से तलाक लिया/और तुमसे...'

'शादी की, क्योंकि मैं वेदांत में गति बनाये हुए था और पाश्चात्य आध्यात्मिकता को पूर्वी आध्यात्मिकता के साथ समन्वय कर रहा था.'

'मैं ईश्वर को खोजना चाहती थी, रिचर्ड. मैंने स्वामी विवेकानंद का राजयोग क्या पढ़ा कि मुझमें नयी शक्ति का संचार हो उठा. मुझे लगा कि मैं किसी मनगढ़ंत पथ की ओर बढ़ने का प्रयास नहीं कर रही हूं. इससे पहले, जब, रिचर्ड तुम मेरे जीवन में नहीं आये थे, बिना किसी की मदद के, पुस्तकों की मदद के भी बिना, मुझे भागवत् उपस्थिति का एहसास होने लगा था. ...मुझे वह भारतीय युवक सदा याद आता रहता है, जिसने मुझे भागवद् गीता के फ्रेंच अनुवाद की एक प्रति उपलब्ध कराते हुए कहा था, 'पढ़कर जानिए कि अपार साधु कल्पनाओं का यथार्थ स्रष्टा कृष्ण कैसा था. मैं अवाक् रह गयी. मुझे लगा कि मुझे कहीं और जाना है.'

'तुम उनके बारे में, बिना उन्हें देखे इतनी दूर तक सोच सकती हो. तुम्हारी कल्पनाएं विमल हैं, पारदर्शी हैं और संकल्पवती हैं परंतु मेरे लिए यह सम्भव नहीं है, प्रिये.'

'तुमने, प्रिय, पॉलिश यहूदी मेक्स तेओं के साथ भी पेरिस में गुह्य विद्या का अभ्यास किया था.'

परंतु मुझे सहारा की सीमा पर स्थित त्लेम्सेन में रह रही मेक्स तेओं की पत्नी अल्मा ने अत्यंत प्रभावित किया था. मैंने वहां डेढ़ेक वर्ष का समय बिताया था, रिचर्ड. वह भी मेरी साधना का एक पड़ाव था. ...उसके बाद तुम्हारे पांडिचेरी से लौटने पर जब तुमने अरविंद की प्रशंसा, में बहुत कुछ संतुलित कहा था और उनका पता देकर सुझाव दिया था कि मैं चाहूं तो उनसे पत्राचार द्वारा अपनी जिज्ञासाओं के बारे में जानकारी ले सकती हूं.'

'हां, प्रिये, जब मैं अरविंदो से मिला था तब मैंने अपने असली रूप को छिपाया था. उनसे मिलना भी तुम्हारी वजह से हुआ क्योंकि मैंने तुममें जो कुछ और जिस तेज़ी से घटता अनुभव किया था, उसके लिए मुझे प्राचीन भारत की उपलब्धियां अत्यंत महत्त्वपूर्ण लगीं. और जब योगी अरविंदों के बारे में मैंने कमाण्डेण्ट से सुना तब मेरी इच्छा उनसे मिलने की हुई और मैं सोच गया कि चुनाव अभियान के सिलसिले में मैं पांडिचेरी आया हूं, तब तो मेरा यह भी कर्तव्य हो जाता है कि तुम्हारी

दुनिया के साधक से मिलूं और उसका अता-पता लेकर तुम्हें दूं.'

'आज हम उनसे मिल रहे हैं, रिचर्ड. मुझे उनके पत्र की वे पंक्तियां सदा याद आती रहती हैं, जिनमें उन्होंने कहा था कि कृष्ण साम्प्रदायिक नहीं हैं. दूसरे वे मानसिक सांचों को तोड़ते हैं ताकि उच्चतर स्तरों से अन्य चीज़ों को उतार सकें. कृष्ण सीधे अतिमन से आते हैं. वे अपनी शक्ति को मानुष के मन, प्राण और अंत:करण में आरोपित करते हैं ताकि मानुष बदल सके, भगवद् स्वरूप को पा सके. ...यह सम्भव लगता भी है, रिचर्ड. मुझे उनके पत्रों के विचारों से लगता है कि वे वही हैं, जो मेरी कल्पना के कृष्ण हैं.' मीरा आल्फासा सोच-सोच कर कह रही थी.

'आज 29 मार्च, 1914 है. हम आज उनसे 3.30 पर र्‌यू फ्रांसवां मातें पर स्थित पुराने गेस्ट हाउस में मिल रहे हैं.'

'बेहतर होगा हम उन्हें सुनते रहें.'

'रिचर्ड, वे बड़े रोमांचक क्षण होंगे.'

'प्रिय, तुम्हारे लिए निश्चित रूप से वे अत्यंत रोमांच-भरे क्षण होंगे.'

'तुम्हारे लिए नहीं, रिचर्ड.' मीरा आल्फासे कहती.

'मैं व्यवहारवादी हूं.'

'दार्शनिक भी.'

'राजनीति में दर्शन काम नहीं देता.'

'तो, रिचर्ड?'

'बेहतर हो, हम राजनीति की बातें नहीं करें. जिज्ञासा के चित्रों को संजोकर क्रमवार जमायें.'

'तुम ठीक कहते हो, रिचर्ड.'

'वे असाधारण तथा विलक्षण योगी हैं.'

'यह मैं तभी समझ चुकी थी जबकि मैंने फ्रेंच भाषा में लिखा उनका पहला पत्र देखा और पढ़ा था. उनके पत्र का प्रत्येक शब्द मोतियों जैसा द्युतिमान था– ठीक प्रफुल्ल शिशु की चमकीली बड़ी-बड़ी आंखों के समान बोलता हुआ चित्त पर टाइप करता हुआ और चित्त पर से पर्दे हटाता हुआ– किसी मनोरम और पुनीत झील-सा गहरा असरदार?'

'तुम उनके बारे में, बिना उन्हें देखे इतनी दूर तक सोच सकती हो. तुम्हारी कल्पनाएं विमल हैं, पारदर्शी हैं और संकल्पवती हैं परंतु मेरे लिए यह सम्भव नहीं है, प्रिये.'

इस समय सूचना मिली कि घोड़ागाड़ी जो टमटमनुमा थी, आ चुकी है. वह पूछ रही थी, 'क्या तुम यहां के तटों पर रोज़ आया करते थे?'

'नहीं?'

'सच यह है कि अंदर से मेरे मन में ईश्वर को खोजने की कोई इच्छा नहीं है. हालांकि मैं इस विषय संवादों में भाग लेता रहा हूं?'

'तब भी, रिचर्ड.'

'हां तब भी, प्रिये. हर एक व्यक्ति से यह अपेक्षा मत करो कि यह आध्यात्मवाद

को समझना चाहता है और ईश्वर से उसे मिलने की इच्छा है.'

'मैं इसे गलत नहीं मानती रिचर्ड, यह स्वाभाविक भी है. ईश्वर से वह क्यों मिलें? कब मिलें? उसके पास तो मरने की भी फुरसत नहीं है.'

'उनके लिए चर्च, मस्जिद, मंदिर, मठ आदि ही काफी हैं.' वे उनसे मिलकर समझ लेते हैं कि वे ईश्वर से मिल लिये पॉल रिचर्ड ने सहज भाव से कहा.

'वो देखो, कितना सुंदर बगीचा है. चमकते हुए नाना प्रकार के रंग-बिरंगे सुमन कैसे झांक रहे हैं खुले वातायन से नव मेघों के शावकों की तरह.'

'यह पांडिचेरी है–निसर्गालय. सौंदर्य का घर. धरती का स्वर्ग.'

'हम गंतव्य पर पहुंच रहे हैं, सर.' कोचवान ने बीच में टोक दिया.

'क्या हमें, वहां सामने उतर जाना चाहिए.'

'जी, सर.'

घोड़ागाड़ी रुक गयी. हम दोनों उतर पड़े. बाहर कहीं कोई नहीं था. मौन था. पवन के हल्के-हल्के झोंके थे. पॉल रिचर्ड ने पूछा, 'प्रिये, तुमने कुछ सोचा है.'

'किस सम्बंध में, रिचर्ड.'

'उनसे निरंतर जुड़े रहने की सम्भावना पर.'

'नहीं, रिचर्ड, ऐसा कुछ नहीं सोचा.'

'मैंने सोचा है.'

'क्या?'

तभी मणि चक्रवर्ती अंदर से बाहर आया, 'उनका स्वागत किया. गुरुदेव से मिल सकेंगे परंतु...'

'समय सीमा है– आधा घंटे, यही ना.'

'ठीक है.' पॉल रिचर्ड ने कहा और दोनों उसके पीछे-पीछे चल पड़े. वे दोनों अंदर पहुंचे. अरविंद सामने ज़मीन पर बैठे हुए थे. सफेद धोती पहने हुए, शांत चित्त, निगाहें नीची किये हुए कुछ समय तक वहां मौन का साम्राज्य छाया रहा. पॉल रिचर्ड ने बात शुरू की, 'मि. अरविंदो, मेरी पत्नी और मीरा आल्फासा.'

'आप प्रसन्न हैं. यात्रा में कोई असुभीता तो नहीं हुई. ...नहीं. आपको कैसे कष्ट होता!' अरविंद ने गम्भीर होकर कहा.

'मैं आपका पत्र पाकर गद्‌गद हो उठी थी. कब से मन चाह रहा था. पॉल रिचर्ड, माई हसबेंड, चार वर्ष बाद यहां आये हैं. यह पहले आपसे मिल चुके हैं.'

समझ सकता हूं कि उनसे आपको क्या मिला? कदाचित् आपका यहां आना सुनिश्चित था. ...याज्ञवल्क्य ने कहा है, 'तुम अपने पड़ोसी या भाई से प्यार इसलिए नहीं करते कि वह तुम्हारा पड़ोसी अथवा भाई है, बल्कि इसीलिए कि तुम उसके अंदर अपने आपको पाते हो.' अरविंद ने सामने दीवार पर निगाहें टिकाये हुए कहा.

मीरा आल्फासा अरविंद की ओर अपलक देखती रहीं. उनका मन खाली

होने लगा– विचार शून्य. उनको ऐसा लगने लगा कि उनके भीतर असीम शांति नवल मेघ शावकों की तरह चुपचाप चली आ रही है. मन एकदम स्थिर हो गया. उनकी आंखें सुलझी हुई थीं परंतु उनके सामने एक अदृश्य तथा बड़ा शून्य था. शून्य में शून्य गुजरता जा रहा था. वह एक बदलाव का आंतरिक अनुभव कर रही थीं. जैसे दूर से आती हुई आवाज़ डैनों पर सवार पवन को झुलाते हुए मन-ही-मन अल्प विराम का आनंद ले रही हो.

उन्हें लगा कि वह जिस कुर्सी पर बचपन से बैठकर ध्यान में अपने आपको भूल जाया करती थी और उन्हें लगने लगता था कि उनके सिर के ऊपर अत्यंत द्युतिमान् अक्षय अंत:ज्योति अवतरित हो रही है, उनके मस्तिष्क में कहीं गहरे में उतरकर वह परम अंत:ज्योति कुछ अनजाना, अनदेखा, अछुआ और असोचा करने लगी है. वह नहीं जानती थी कि वह क्या हो रहा है, क्यों हो रहा है और कौन कर करा रहा है? कैसे कर करा रहा है?

उनको लगने लगा कि कोई उनसे कुछ करवाना चाहता है. सूर्य पीला होकर हर बार अरुणाभ होने लगा है. उस महाज्योति का अंतस् पलट रहा होता था. वे शांत परंतु आश्चर्यचकित होकर रह जाती थीं कि वह सब उनमें क्यों उतर आना चाहता है, जिसके बारे में उन्हें कुछ ज्ञात नहीं है. वे नहीं जानती थीं कि वह दिव्य जीवन को इस धरती पर व्यक्त करना चाहता है.

वह ईश्वर की अंतरंग अनुभूतियों से भरने लगतीं. सच यह था कि वे ईश्वर और उसकी महती कृपा को तब नहीं जानती थी और जब जानने की उन्हें अनुभूति होने लगी तब उनकी चेतना और उनके कर्म में आंतरिक समन्वय होने लगा था और उनके बीच गहरी संलग्नता कार्य कर उठी थी.

अद्भुत! आश्चर्यजनक! असम्भव का सम्भवनात्मक संस्करण! उनको व्यावहारिक स्तर पर, चेतना के अंत:द्वार पर और बाह्य जगत् के समस्त बाह्य आवरण को उतारकर किसी पदचाप का स्पष्ट और गहरा अनुभव हुआ. और उनके सामने आध्यात्मिक तथा आंतरात्मिक सम्बंध अपेक्षाकृत पूर्व के अधिक स्पष्ट होने लगे.

उनमें एक अंतर्ध्वनि देर तक जागते-सोते हुए भी अहर्निश अक्षय ज्योति की तरह अनुगूंजती हुई शब्दातीत की अंतरंगों को उद्घाटित करती रहती थी. नामात्मक जगत् के बहुत आगे, बहुत गहरे, शायद समंदर से भी गहरे, अनुदृश्यों के लैंडस्केप बनाकर रिझाती रहती थी.

वे सब एक साथ, जिनमें उनका अदेखा कृष्ण भी था जो निरंतर उनमें बने रहने की अनुभूति कराता रहता था, अभिव्यक्त हो उठे. उनके गुह्य अनुभूतिपरक रहस्य स्वयं अपने मंतव्य का पाठ कर उठे. वे

उसे अमूर्त, अनदेखे और अनिर्मित का सदा रेखाचित्र बनाया करती थीं और सोच के गहरे समुद्र में उतरकर यह अनुभव करती थीं कि उनकी विशिष्ट सत्ता के रूपाकार अंत: आभास और अगोचर कृष्ण से इस धरती पर, इसी जन्म में अवश्य भेंट होगी. उनका मीरापन कृतार्थ हो उठेगा, देवगण पुष्प-वर्षा कर उठेंगे.

हैं! वे वही तो कृष्ण हैं जो जाने कब से उनके मानस, अंत:मानस और आंतरात्मिक सम्बंधों को प्रभावित कर रहे हैं. वे कह रही थीं, 'मैं ही मीरा आल्फासा हूं. मुझे पहचान रहे हैं. तुम्हीं ने मुझे आमंत्रित किया है. मेरे नाम से आल्फासा हटाकर तुम्हीं ने मुझे मात्र मीरा रहने दिया है. हे सर्वेश्वर, अनंत, असीम, अथाह, अपार, यह भी तुम्हारी लीला का ही एक परिदृश्य है, गीता के एक अगोचर अध्याय की तरह, जहां तुम हो परंतु नज़र नहीं आते और नज़र नहीं आने से इनकार भी नहीं होते. चित्त पर ऐसे उतरकर छा जाते हो जैसे निसर्गाचल पर ओस की मौक्तिक बूंदों का संसार. अलौकिक दिप-दिप करता हुआ वह संसार.'

सुन रहे हो, मीरा, तुम्हें ही जाने कब से पुकार रही थी! तुम कब से अंत:गुहा में बैठे मीरा की प्रतीक्षा कर रहे थे! ...यह मेरा भारत है, मेरी कर्मभूमि! तुम्हारे पास जो रिक्त स्थान है, वह मेरे लिए तुमने छोड़ रखा है. लो, अब तो मैं आ गयी हूं, कुछ तो अक्षयानंद मुखर होने दो.'

अरविंद की अंतश्चेतना पर अहर्निश दस्तक हो रही थी और वे कहे जा रही थीं, 'ये भ्रम नहीं, निर्भ्रम है. ये आश्वस्ति है और इसका अनुगूंजा मंत्र है. तुम्हारी साधना का साकार अस्तित्व सम्बोध का साक्षी धर्म यही तो है, ऋषिदूत, उठो, अब विलम्ब नहीं. यही अकर्म का कर्म, यही अचेतना का चैतन्य स्वरूप है.'

अरविंद ने पूरी आंखें खोल दीं और देखा एक तन्वी काया, एकदम गोरी, ललाई लिये, मुख-मंडल पर तेजस्विता, आंखों में जादुई संरचना के सद्य: जन्मे गुलाबों का सुषमा सौरभ का अनंत बसंत. अद्भुत दिव्यता.

वह भी उन्हें ही अंतर्दृष्टि से अपलक देखे जा रही थी. समझ रही थी कि जिसे वह सर्वश्रेष्ठ, उच्चतम तथा पुनीततम मान रही थी, वह उस आदर्श की तुलना में, जिसे वह मानने लगी थीं, अबोध है. पर अब नहीं. अब आकाश से धुंधलिका हटने लग रही है, अदृश्य तथा अगोचर स्पष्ट से स्पष्ट होने

'वह दिन जल्दी ही आयेगा, हमारे तुम्हारे जीवन की अर्ध-शताब्दी से पूर्व आयेगा, जब वहां अंधकार प्रकाश में बदल रहा होगा और उसका राज्य इस धरती पर कार्य रूप में स्थापित होने लगेगा.'

लगा है. वे उत्तरोत्तर उस समग्र संचेतन के अचेतन का अनुभव कर उठी हैं.

'पांडिचेरी पसंद आया, मीरा.'

'बहुत पंसद आया.' किसी ने मीरा के हृदय में कहा, 'पसंद क्यों न आता, तुम जो वहां हो. यहीं तुम्हारे से कुछ दूरी पर परंतु पार्श्व में डूप्लेक्स स्ट्रीट पर डूप्लेक्स हाउस में मैं रहती हूं. यहां से मैं तुम्हारा कमरा देखती रहती हूं. यही तो गेस्ट हाउस है– यह दो कमरे वाला. मैं उधर ही मुंह करके ध्यान करती हूं. उसी ध्यान से मैं अंतर्धान में उतरकर तुम्हारे कमरे में, उस खिड़की से उसी तरह प्रवेश कर जाती हूं जैसे प्रत्यूषकालीन बाल रवि की मधुर रश्मि.'

'अपूर्व सौंदर्य अगोचर होता है, अनुभवातीत. तुम मानती हो, यह सब, मीरा, अगोचर ही गोचर हो उठता और अनुभूति से पिघलकर हिम नद्-सा धीरे-धीरे प्रवाहित होने लगता है. फिर भी हम उससे अनभिज्ञ रहते हैं.' अरविंद नहीं, उनकी आंखें बोल उठी थीं.

'मेरे न मानने का प्रश्न कहां रह जाता, मेरे अगोचर के गोचर, कृष्ण, जिसका मैंने कई बार रेखांकन किया और हर बार रेखांकन अलग नज़र आया. एक दिन मैंने सोचा था, उस सोचने का गोचर कारण भी था कि मैं पेरिस के उस भाग में बढ़ी हुई हूं, जहां मातिस, सोजान्न, माने आदि जैसे चित्रकार अपनी तूलिका से सम्पूर्ण विश्व को आलोकित कर रहे थे. प्रकाश का अकेला सूर्य या चंद्र दावेदार नहीं है, वे भी हैं, सशक्त दावेदार हैं क्योंकि वे अंतर्जगत् को देदीप्यमान् कर रहे हैं, जहां सूर्य-चंद्र की पहुंच नहीं है, जिसे अंधे नहीं देख सकते.' परंतु मीरा आल्फासा ने प्रत्यक्ष में यह नहीं कहा. प्रत्यक्ष में उन्होंने इतना ही कहा, 'तब मेरी अनुभूतियों में प्रभाववाद के महान् चित्रकार थे. मैंने एकोल दे बो आर में अपना अध्ययन पूरा कर शेष बचे समय में यही तो करने का अभ्यास किया है.'

'यानी अगोचर का रेखांकन.'

'मुझे नाम देना नहीं आता है, फिर भी मैं पूरी समझ सोच के साथ कह सकती हूं कि वही था.' इसके साथ ही मीरा आल्फासा ने एक कागज़ उनकी तरफ बढ़ा दिया.

अरविंद कुछ देर तक उस कागज़ को देखते रह गये– उसमें उनका माथा दीप्तिवान् था, चौड़ा और उभरा हुआ था, बीच से दोनों तरफ केश थे, गर्दन को छूते हुए स्तब्ध. उनकी दाढ़ी उनकी मूंछों ने उनके सौम्य अरुणाधरों के भाग को अपने आगोश में लेने की चेष्टा की हुई थी. उनके कंधे बलिष्ठ थे. सम्पूर्ण आकृति सुदृढ़, सचेतन, सशक्त और सम्पूर्ण थी. उसे जितनी बार देखो और जिस कोण से देखो, देखते रहो, वह हर बार अपने अस्तित्व की सर्वथा नयी पहचान से साक्षात्कार करा

रही थी. अरविंद ने कहा, 'मीरा, क्या मैं ऐसा हूं? कल्पना कद बढ़ाने में उतनी ही सक्षम है, जितनी कद को बौना बनाने में. यहां तो मेरा कद बढ़ा दिया है आपने मीरा.' पॉल रिचर्ड की ओर वह रेखांकन बढ़ाते हुए वे कहते, 'आपका क्या विचार है?'

'पॉल रिचर्ड ने उस रेखांकन को गौर से देखकर उन्हें लौटाते हुए कहा, 'किस सम्बंध में मि. अरविंदो.''

'यहां सम्बंध तो कदाचित् रेखांकन का ही है, क्यों मीरा?'

'आप रेखांकन नहीं हैं.' पॉल रिचर्ड ने गहरे डूबते हुए बीच में कह डाला.

'परंतु मीरा, आपसे इत्तिफ़ाक नहीं रखती, रिचर्ड.' इस बार अरविंद को लगा कि पहले वाला रिचर्ड गूढ़ हो गया है, गुह्य भी.

'सवाल आपका है, मीरा का नहीं. ...मीरा तो इस रेखांकन पूर्व की तरह सालों चित्र प्रदर्शनी में रख देगी.'

'तो?'

'यह रेखांकन मीरा की गहन अंतर्दृष्टि की अनबूझी जिज्ञासाओं जैसा एक साथ तरल, सरल, गूढ़ और गहन है.' पॉल रिचर्ड अपनी पुरानी इमेज को उलट देना चाहते थे.

'मुझे इस बार पहले से अधिक प्रसन्नता और आनंद की अनुभूति हो रही है, मि. रिचर्ड.' अरविंद कहने लगते.

'मुझे भी.'

'वह क्यों?'

क्योंकि तब मेरे साथ मेरी पत्नी मीरा नहीं थी. इससे स्पष्ट है कि तब यह रेखांकन भी नहीं था.

'लेकिन यह था.' अरविंद ने छत की ओर देखते हुए कहा.

'मीरा के अंतर्मन में अथवा हृदय में. वह तो होता ही है. उसके नहीं होने का सवाल कहां उठता है. यह सवाल ही तब उठा है जब यह रेखांकन अस्तित्व में आया है. और अब उसे उठे भी पलों का रेला गुज़र चुका है और गुजर रहा है.' पॉल रिचर्ड की आंखों में रहस्य गूढ़ से गूढ़तर हो रहे थे.

'आप सबको यह तो यकीन है कि हम सब इस रेखांकन पर चर्चा कर रहे हैं.'

'मैं सबके बारे में नहीं, अपने बारे में कह सकता हूं.' इतना कहकर पॉल रिचर्ड ने दाहिना पांव कुछ-कुछ मोड़ा.

'क्या मि. रिचर्ड.'

'मैं उतना इस रेखांकन पर बात नहीं कर रहा हूं, जितना उस पर, जिसके कारण यह रेखांकन अस्तित्व में आया है.'

'मीरा पर क्या?'

'नहीं, मि. अरविंदो.'

'तो फिर किस पर?'

'आप पर.'

'मेरे पर.' साचरज अरविंद ने सच्चे पॉल रिचर्ड की ओर देखा और उन्हें लगा कि वह दार्शनिक हैं. उसके लिए यह

रेखांकन दर्शन का एक गुह्य रहस्य प्रकट होने की सम्भावना से अधिक नहीं है. वे पूछ रहे थे, 'पर कैसे?'

'मीरा, खामोश क्यों हो, मेरी कुछ मदद नहीं करोगी.' पॉल रिचर्ड ने विषय को मथ डाला.

'मैं स्वयं कुछ नहीं जानती और जो जानती थी, वह मेरे अतीत का निष्क्रिय हिस्सा बन गया है.'

'क्या इस पर मुझे या हममें से किसी को टिप्पणी करनी चाहिए?'

'मैं इसकी ज़रूरत नहीं समझता.' पॉल रिचर्ड ने पूरे मन से अगोचर का साथ देते हुए कहा.

'शायद उसको, सिर्फ कृतिकार को छोड़कर किसी दूसरे को टिप्पणी करने की ज़रूरत भी नहीं है.'

'उसे भी कतई नहीं, मि. अरविंदो.' मीरा के स्वर में प्रार्थना का अंत:स्पर्श था.

'तो कम-से-कम, मैं आभार तो व्यक्त कर सकता हूं, मीरा. ...या...'

'वह आप बहुत पहले ही कर चुके हैं.'

'कल जब यह रेखांकन नहीं हुआ था, क्यों मीरा?' अरविंद पूछते होते.

इस पर सबके चेहरों पर स्मित रेखाएं उभरतीं और नयन होठों पर आ थिरकते. मौन उतर आता सघन कुहरा बनकर शनैः-शनैः और किरणों पर चंचल होने जैसा उत्साह नज़र आने लगता.

'ये रेखांकन तब भी था, अब भी है और आगे भी रहेगा.' मीरा के हृदय कपाट खुल उठे.

'तो क्या मैं यह समझूं कि हमारी भेंट एक ज्योतिषी से हो रही है?'

'हर व्यक्ति में एक ज्योतिषी बैठा है, मात्र उसे छूने की देर है.'

'कैसे? ...यह मैं नहीं जानता.'

'जैसे पारस पत्थर से लोहे को छूने-भर की देर.' मीरा आंख झपकाकर कहती.

'यहां पारस पत्थर कौन है?'

'मैं नहीं हूं.' पॉल रिचर्ड कहता.

'और मैं नहीं?' मीरा कहती.

'तो फिर मैं रह गया.' अरविंद ने धीरे-से, अंत:स्फूर्त होकर दोनों की ओर देखा. कुछ सोचकर आगे कहा, 'परंतु इसे मैं नहीं मानता.'

'वह तो मानता है.' इस बार अचंचल भूरे नयन छत की ओर देख रहे थे.

'मैं भी यही कहने वाला था.'

'किस संदर्भ में?'

'क्यों, मीरा तुम क्या कहती हो?'

'जो आपको ठीक लगे.' मीरा कहती.

'हम दोनों को नहीं, क्यों?' पॉल रिचर्ड तेज़ी से जटिलता के बंध खोल देते.

'फिर तो मैं भी जुड़ना चाहूंगा.' अरविंद इतना ही कह पाते कि पॉल रिचर्ड मुस्करा उठते और धीरे-से कहते, 'आपने हमारा काम आसान कर दिया है, मि. अरविंदो.'

'यही होना चाहिए.'

'यही यहीं होता, रिचर्ड.'

'क्यों?' पॉल रिचर्ड पूछता.

'तुम्हीं ने मुझे बताया था रिचर्ड, मीरा तुम फ्रांस में लगी किसी कला-प्रदर्शनी को देखने नहीं जा रही हो, वह तपोभूमि है– अनंत ऋषि-मुनियों की कार्यस्थली, कर्मभूमि.'

'हां, रिचर्ड, तुमने मुझे सुधार कर एक अजनबी गलती होने से बचा दिया?'

'इस समय भारत का सूर्य अस्त है, मीरा.'

'वह दिन जल्दी ही आयेगा, हमारे तुम्हारे जीवन की अर्ध-शताब्दी से पूर्व आयेगा, जब वहां अंधकार प्रकाश में बदल रहा होगा और उसका राज्य इस धरती पर कार्य रूप में स्थापित होने लगेगा.' मीरा ने नीचे देखते हुए, कहीं गहरे में डूबकर, सधे हुए स्वर में धीरे-से कहा.

'क्या हमें उसी छोर से आगे बात नहीं बढ़ानी चाहिए, जहां जन्मे सूत्र अभिव्यक्ति के लिए और प्रतीक्षा नहीं कर सकते?'

'तो कहिए भी, रिचर्ड.'

'मि. अरविंदो, मैं मीरा और आपको जिन गहराइयों में उतरकर जीवन और जगत् के लिए, कुछ विशिष्ट होता, अनुभव कर रहा हूं. ...खासतौर से आपको. वह हमसे मांग करता है कि उस सुबह में कुम्भ की तरह सबको गंगा में गोते लगाने का अधिकार है. आप हमें उससे वंचित मत कीजिएगा.'

'मैं कुछ समझा नहीं, मि. रिचर्ड.' अरविंद ने अपने बालों को ठीक करते हुए कहा.

'जो कुछ आप यहां कर रहे हैं और जिस अपूर्व श्रद्धा-भक्ति से कर रहे हैं, वह अनुष्ठान है समूची संस्कृति के उत्थान, मंगल और परमेश्वर के साम्राज्य को धरती पर लाने का. ...लेकिन इस महान् अनुष्ठान की लोकाभिव्यक्ति कभी दृष्टिगत नहीं होती. जो व्यक्ति आपके महान् व्यक्तित्व और कृतित्व के प्रकाश में आ चुके थे, वे आपके इन चार वर्षों के गुमनामी जीवन से यह समझने लगे हैं कि आप कहीं खो गये हैं या मात्र योगी होकर रह गये हैं ठंडे पड़े ज्वालामुखी की तरह. क्या आपको ऐसा नहीं लगता है, मि. अरविंदो?' पॉल रिचर्ड ने भूमिका प्रस्तुत करते हुए धीरे-धीरे, पूर्ण धैर्य के साथ कहा?

'वह तो है, रिचर्ड बंधु. उसके लिए हम कुछ नहीं कर सकते. दूसरे, प्रचार में मेरा विश्वास नहीं है.' अरविंद ने सोचते हुए कहना जारी रखा,

जो कुछ आप यहां कर रहे हैं और जिस अपूर्व श्रद्धा-भक्ति से कर रहे हैं, वह अनुष्ठान है समूची संस्कृति के उत्थान, मंगल और परमेश्वर के साम्राज्य को धरती पर लाने का.

'यहां जो कुछ सम्भव बन पा रहा है, वह प्रयत्न निरंतर जारी है.'

'क्या आपको यह नहीं लगता है कि समूचा मानव समाज उससे लाभान्वित हो और प्रभु के राज्य में प्रवेश कर सके?'

'लगता है परंतु उसके लिए कुछ नहीं किया जा सकता. हम तो स्वयं अकेले हैं. यहां भी हम पर ब्रितानियां सरकार की निगाहें हैं. वे हमें अपने अधिकार क्षेत्र में लेने के लिए बहुत उत्सुक हैं. उसने इस सम्बंध में अनेक षड्यंत्र रचे हैं.' अरविंद ने गहरे सोच में डुबकी लगाते हुए कहा.

'आप तो किसी सरकार के विरुद्ध कोई काम नहीं कर रहे हैं. समूची मानवता के स्थान लिए काम कर रहे हैं.'

'वह ऐसा नहीं मानती.'

'इसलिए ब्रिटिश भारत में आप नहीं लौट पा रहे हैं?' पॉल रिचर्ड ने पूछा.

'नहीं, मि. रिचर्ड, यह बात नहीं है.'

'फिर क्या बात है?' इस बार मीरा प्रश्न कर उठी. इसके साथ ही उन्होंने स्कार्फ ठीक किया.

'यह स्थान मेरी कर्मभूमि, साधना भूमि... आप कुछ भी कहें, बन चुकी है. मुझे जो चाहिए था, वह यहीं मिल पा रहा है. अब मैं यहां से कहीं नहीं जाऊंगा, चाहे सम्राट् ही आमंत्रित क्यों न करे. मेरे पास अन्य कार्यों के लिए कोई अवकाश नहीं है.'

'परंतु इस सबकी लोकाभिव्यक्ति तो हो, ताकि सब जान सकें, जुड़ने की ओर ध्यान दे सकें.' पॉल रिचर्ड ने विषय की गम्भीरता को उजागर किया.

'फिर, आप क्या सोचते हैं?' अरविंद ने सहज भाव से पूछा.

मीरा की दृष्टि पॉल रिचर्ड पर थी. उन्हें यह लगने लगा था कि वह उस द्वार पर जा पहुंची है, जिसका उन्हें लम्बे समय से इंतज़ार था. उन्हें विश्वास था कि पॉल रिचर्ड ऐसा कुछ नहीं करेगा, जिससे वातावरण गर्मा उठे.

'आपके अनुभव से जुड़ा वह प्रसंग है. पत्रकारिता में आपने जबर्दस्त काम किया है. कई पत्र-पत्रिकाएं सम्पादित की हैं, उन्हें प्रकाशित भी करवाया है जैसे– 'वंदे मातरम्', 'कर्मयोगिन्', 'धर्म' इत्यादि. उनसे जनमानस उद्वेलित हुआ, उसमें नवीन ऊर्जा पैदा हुई. ...आपने दर्शन के नवीन अध्याय को प्रारम्भ किया.'

'ठहरिए, मि. रिचर्ड. यह तथ्य गलत है कि मैं कभी दार्शनिक रहा हूं. मैं पांडिचेरी आने से पहले दर्शन के बारे में नहीं के बराबर समझता था. अलबत्ता मैंने कविताएं लिखीं और राजनीति में सक्रिय रहा.' अरविंद ने तत्काल आपत्ति दर्ज करा दी.

'मेरी जानकारी अधकचरी हो सकती है, मि. अरविंदो, मैं बाहर से आया हूं और अपने सीमित साधनों के आधार पर जानकारी एकत्र कर पा रहा हूं. ...मैंने सोचा है और मेरा सोच आपके सक्रिय

उत्तरदायित्व से आगे बढ़ सकता है.' पॉल रिचर्ड ने कमरे के चारों ओर दृष्टि दौड़ाई– एक सहज प्रसन्नता की लहर वातायन से प्रवेश कर गयी और सारे कमरे को ताज़गी से भर गयी.

'मुझसे आप क्या चाहते हैं, रिचर्ड?'

'मेरा विनम्र निवेदन है कि हम एक आध्यात्मिक दार्शनिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ करें. उस माध्यम से सारे विश्व को आपके महान् समन्वयात्मक कार्यों की जानकारी मिल सके. वह कई भाषाओं में भी निकल सकती है.'

अरविंद के अंतर्मन की बात थी. वह यह भी मानकर चलते थे कि एक योगी को सब कुछ कर सकना चाहिए. उन्होंने सहज भाव से पूछा, 'मुझसे आपको क्या अपेक्षाएं हैं?'

'सम्पूर्ण पत्रिका की सामग्री, सम्पादन और प्रकाशन में आपकी दिव्य-दृष्टि सक्रिय रहे– आप सम्पादन का भार स्वीकारें.'

'क्या उसका कोई नाम सोचा है आपने?'

'नहीं, मि. अरविंदो. ...आप ही कुछ सोचिए.'

'सोचता हूं, रिचर्ड. मीरा, आप भी मदद कीजिए.' अरविंद को लग रहा था कि क्या इतनी जल्दी यह सब सम्भव हो सकेगा. वे दो-चार बार इस सम्बंध में सोच चुके थे और धनाभाव के कारण मौन हो गये.

'कृपया आप ही तय कीजिए. मैं इस मामले में अनुभवशून्य हूं.' मीरा आल्फासा ने नीचे देखते हुए कहा.

'आर्य.' अरविंद ने कहा.

'अंग्रेज़ी और फ्रेंच में दोनों में अरविंदो.'

'यह नाम जाने दीजिए.'

'इसका उद्देश्य?' पॉल रिचर्ड ने संकेत चाहा.

'सहज है, रिचर्ड– जैसे अनागत के विचार का सम्बोध पाना, उसकी नींव रखने में सहायता करना और अतीत के स्वर्णिम अध्यायों के साथ उसका यह-सम्बंध बनाना. ...ऐसा ही कुछ और...'

'दर्शन!'

'मैंने पहले ही कह दिया है कि मैं दार्शनिक नहीं हूं, चिंतक हूं.'

'वेद, उपनिषद् और पुराण आपकी प्रेरणा के स्रोत लगते हैं.'

'आपका विषय कहीं वेदांत तो नहीं है, रिचर्ड बंधु.'

'आप वेदांत और पाश्चात्य दर्शन के समन्वय पर शोध करते रहते हैं.' मीरा आल्फासा ने बीच में ही सहज ढंग से कहा.

'क्या आपको यह स्वीकार है कि यह संस्कृति उस तत् का मूलभूत सत्य नहीं है?'

'उस तत् की स्वच्छंद विविधता और अनंत बाह्य विवर्तनशीलता का दृश्यरूप सत्य है.' पॉल रिचर्ड ने सहज होकर आगे

कहा, 'जिसे पाकर हम अंतर्मुखी हो जाते हैं– तत्परम ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति. वही सच्चे ज्ञान का धरातल है.'

'रिचर्ड, आपने अपने परिचय में पहले नहीं बताया था.'

'यथार्थत: मैं दर्शन की अपेक्षा अपनी कर्मशाला राजनीति, सैनिक गतिविधियों को मानता हूं, मि. अरविंदो.'

'मुझे आपका प्रस्ताव स्वीकार्य है. परंतु पत्रिका का अन्य कार्य जैसे धन, सदस्य बनाना, बिक्री विभाग, लेखा-जोखा तैयार करना आदि. फ्रेंच और अंग्रेज़ी संस्करण. मैं फ्रेंच का अंग्रेज़ी दोनों में से किसी एक भाषा में लिख सकूंगा. अनुवाद मैं नहीं करूंगा.'

'मैं कोशिश करूंगी.' मीरा आल्फासा ने तपाक से कहा.

'हम दोनों यह सब व्यवस्था करेंगे– आपको इस सबके लिए. हमें आपसे सामग्री संकलन, सम्पादन और प्रूफरीडिंग की उम्मीद रहेगी.' पॉल रिचर्ड ने बैठने का रुख बदलते हुए धीमे स्वर में कहा.

'पृष्ठ संख्या?'

'मि. अरविंदो, प्रारंभ में चौसठ पृष्ठ ठीक रहेंगे.'

'ठीक है.' अरविंद ने कहा.

'आज हम २९ मार्च को यह निर्णय ले सकने की ओर आगे बढ़े हैं.' पॉल रिचर्ड ने कहा, 'और इसका पहला अंक?'

मीरा आल्फासा ने कुछ हिसाब लगाकर कहा '15 अगस्त, 1914 को 'आर्य' का पहला अंक प्रकाशित हो.'

'ऐसा क्यों?'

'इस दिन आपका बयालीसवां जन्मदिवस है और सबके लिए यह दिन आशा और प्रकाश का संदेश लेकर आयेगा.' मीरा आल्फासा की आंखों में द्युति और चमक उठी.

'तब तक इस अंक की तैयारी को भी समय मिल जाएगा और अन्य औपचारिकताएं भी पूरी हो सकेंगी.'

'आपका आशीर्वाद मिल सकेगा और यह यांत्रिक तंद्रा टूट सकेगी, जिससे गलतफहमियों को जन्म मिला या मिल रहा है.' ...पॉल रिचर्ड का मन गद्गद हो उठा.

इसके बाद सब उठे. अरविंद भी. वे बाहर तक आये. वे लोग चल पड़े. घोड़ागाड़ी की जगह अब कार आ चुकी थी. मीरा आल्फासा की आंखों में अद्भुत सुरूर था. गहरी चमक थी. अरविंद अंदर की ओर मुड़ गये एकदम तटस्थ भाव से. उनकी गति मंथर थी. उनका चेहरा गम्भीर था. उनकी आंखों में सहज परंतु दिव्य आकर्षण था. उन्होंने अपने अंतस्थ परमेश्वर को सिर झुकाया और सीधे ध्यानमग्न होने के लिए अपने आसन पर जा बैठे.

(क्रमश:)

व्यंग्य

चंद्रमा का पृथ्वी भ्रमण

● प्रियदर्शी खैरा

हमारे जैसे प्रात: भ्रमण को कृत संकल्पित व्यक्ति सुबह साढ़े सात बजे के आसपास भ्रमण पर निकलते हैं क्योंकि हमारे मोबाइल का मुर्गा सात बजे बांग देता है. ऐसे ही एक दिन पार्क में आठ बजे तथाकथित महान ज्ञानी, विद्वान एवं उपदेशक श्रीमान नगीना प्रसाद से मुलाकात हो गयी. सामान्य रूप से उनको देखकर भ्रमणार्थी अपनी दिशा परिवर्तित कर देते हैं, किंतु उस दिन आमने सामने से टकराव हो जाने से दिशा परिवर्तन का विकल्प ही नहीं बचा. मुर्गा फंसता देख वे अपनी औकात पर आ गये और पूछा, 'खैरा जी,बहुत दिनों बाद दिखे!'

हम बोले, 'क्या करें साहब, स्वास्थ्य खराब था.'

उन्होंने अवसर लपक लिया और बोले, 'ब्रह्म बेला में घूमा करें, शुद्ध वायु से फेफड़े और हृदय स्वस्थ होंगे, तो आप स्वस्थ रहेंगे.'

मैंने पूछा, 'आप ब्रह्म बेला में क्यों नहीं घूमते?'

वे चहक उठे, 'मैं तो स्वस्थ हूं यह देखो स्मार्ट वॉच, 6875 मीटर चल चुका हूं. हां, अब रिटायर हो गया हूं तो लेट उठता हूं. एक बार ब्रह्म बेला में निकला था, एक बाबा मिल गये, वे हवा खा रहे थे. मैंने पूछा तो बोले ब्रह्म बेला की वायु में गजब की जीवन शक्ति होती है. मैं तो यही खाता हूं और फिर दिनभर कुछ नहीं लेता.'

मैंने कहा, 'इन बाबा जी को खाद्य मंत्री बना दिया जाए तो देश की खाद्य समस्या का समाधान हो जाएगा.'

वे बोले, 'इसके बाद वे कभी मिले नहीं. अरे हां, कहीं पढ़ा था ब्रह्म बेला में अच्छी आत्माएं घूमने निकलती हैं .आप तो आध्यात्मिक व्यक्ति हैं, शायद आप से टकरा जाएं.'

उनकी बातें मुझ पर प्रभाव डालने लगीं मैंने उत्सुकता से पूछा, 'ब्रह्म बेला कब होती है?'

वे बोले, 'रात के अंतिम पहर में.'

मैंने फिर पूछा, 'अंतिम पहर कब?'

'हम सब बता देंगे तो तुम क्या करोगे, मुझे घर जाना है.' कहते हुए वे तेज़ी से आगे बढ़ गये.

मैं समझ गया कि उनकी ज्ञान क्षमता

ने जवाब दे दिया है. घर आकर गूगल बाबा से पूछा, तो समझा, ब्रह्म बेला रात के अंतिम पहर रात तीन से सुबह छह के बीच कभी होती है. दूसरे दिन सुबह चार बजे उठा और पार्क के लिए रवाना हो गया. पार्क में सन्नाटा पसरा हुआ था, आदमी तो दूर चिड़िया भी नहीं दिखाई दे रही थी. मैं डर से थरथर कांपने लगा. तभी दूर धवल वस्त्र में एक साया हिलता-डुलता नजर आया, मैं सिहर उठा. कहीं यह भूत वूत तो नहीं! अंतरात्मा बोली, भूत ब्रहम् बेला में नहीं, आधी रात को घूमने निकलते हैं. मैंने चैन की सांस ली और हिम्मत कर साये के करीब पहुंचा. वह एक सुंदर पुरुष था जिसकी गोल मुखाकृति थी रंग गोरा था एवं चेहरे पर कहीं-कहीं काले दाग थे. मैं उसके साथ-साथ चलने लगा, परिचय बढ़ाने की दृष्टि से पूछा, 'आप भी यहां घूमने आते हैं,कभी दिखे नहीं?'

वह बोला, 'कभी-कभी, पर आप भी तो कभी दिखे नहीं.'

'मैं विलम्ब से आता हूं सूर्योदय के बाद.' मैंने उत्तर दिया.

'तब तक मैं चला जाता हूं.' उसने कहा.

'तब तो आप तीन बजे सुबह उठ जाते होंगे?' मैंने जिज्ञासा बस पूछा.

'नहीं पूरी रात जागता हूं.' उसने उत्तर दिया.

'आप पुलिस में नौकरी करते हैं या अस्पताल में.' मैंने पूछा.

'दोनों से भगवान बचाये.' उसने उत्तर दिया.

अब वह मुझे रहस्यमय लगने लगा. उस से पीछा छुड़ाने के लिए मैं तेज़ी से चलने लगा, वह समझ गया और बोला, 'डरो मत, मैं चंद्रमा हूं.'

मैंने आश्चर्य से पूछा, 'आप चंद्रमा है, रहते कहां हैं?'

'हां चंद्रमा हूं, आकाश में रहता हूं.' उसका उत्तर था.

'आकाश में कहां?' मेरा प्रश्न था.

'अपने निर्धारित मार्ग पर घूमता हूं. उसने उत्तर दिया.

तभी मुझे ठोकर लगी, मैं डगमगाया तो वह बोला, 'सम्भल कर चलिए, मैं तो आकाश में लटका रहता हूं फिर भी नहीं डगमगाता, आपके पास आधार है फिर भी डगमगा गये. यदि मैं डगमगा जाऊं तो प्रलय आ जाए.'

मुझे समुद्र के ज्वार भाटा याद आने लगे और लगने लगा कि ये चंद्रमा ही हैं. मैंने उत्सुकता से पूछा, 'अच्छा, आप वास्तव

पहले धरती की रिसर्च तो कर लो, फिर हमारे यहां आओ. यहां तुमने पृथ्वी को बांट रखा है. दूसरे देश जाने के लिए पासपोर्ट लगता है और हमारे यहां मुंह उठाये चले आते हो. ब्रह्मांड के नियम मानते नहीं,

में चंदा मामा हैं.'

'हां भाई, तुम्हारे पिताजी भी मुझे चंदा मामा कहते थे. अब तुम सोच लो मैं तुम्हारी मां का भाई हूं या दादी का.'

'आप बच्चे से मज़ाक कर रहे हैं, यहां क्यों आये हैं.'

'भ्रमण के लिए'

क्यों?'

'क्यों का क्या अर्थ? तुम हमारे यहां जा सकते हो, हम तुम्हारे यहां नहीं आ सकते क्या?' उसने उत्तर दिया.

'हम वहां रिसर्च के लिए जाते हैं.'

'पहले धरती की रिसर्च तो कर लो, फिर हमारे यहां आओ. यहां तुमने पृथ्वी को बांट रखा है. दूसरे देश जाने के लिए पासपोर्ट लगता है और हमारे यहां मुंह उठाये चले आते हो. ब्रह्मांड के नियम मानते नहीं, ऐसा कितने दिन चलेगा.' चंद्रमा समझाते हुए बोला फिर पूछा, 'क्या तुम कवि हो?'

'नहीं, क्यों?' मैंने पूछा.

'मैं उन कवियों को ढूंढ़ रहा हूं, जिन्होंने मेरा जेंडर बदल दिया, पुल्लिंग से स्त्रीलिंग कर दिया, अब तुम देखो, चांद सी महबूबा हो मेरी, चौदहवीं का चांद हो, चांद जैसे मुखड़े पर बिंदिया सितारा, कितने गीत सुनाऊं, बहुत क्रोध आता है, तुम्हारे कवियों की ऐसी कल्पना पर.' चंद्रमा झल्लाते हुए बोला.

'छोड़ो प्रभु रजनीश, कवियों का कोई ठिकाना नहीं, वे पानी में आग लगा दें, पहाड़ को नदी बना दें, चाय के कप में क्रांति कर दें, भूकंप ला दें, ज्वालामुखी फोड़ दें, आप तो समझदार हैं.' मैंने समझाया.

'मुझे रजनीश मत कहो बंधु, तुम्हारे यहां तो रजनीश भगवान बन गये थे. हम भगवान नहीं, देवता हैं.' चंद्रमा अपने कानों पर हाथ रखते हुए बोला, 'तुम तो हमसे भी पार जाने की बात करते हो,चलो दिलदार चलो चांद के पार चलो– कहां जाने का कार्यक्रम है?

'मंगल पर जाने का विचार है.'

'मंगल देव आपका मंगल करें.' चंद्रमा हाथ जोड़ते हुए बोला.

'प्रभु, मंगल के कारण मेरे विवाह में विलम्ब हो गया, मंगल देव जन्मपत्रिका की लग्न में विराजमान हो गये, चार को मैंने रिजेक्ट किया छह ने मुझे, जब गुरु की कृपा हुई तो विवाह हुआ.' मैंने आप बीती सुनायी.

सुनकर चंद्रदेव मुस्कुरा दिये फिर प्रश्न किया, 'तुम्हारे यहां क्या चल रहा है? अब तो अक्सर ऊपर से बड़ी सुंदर आतिशबाजी दिखती है. क्या रोज दिवाली मनाने लगे हो?'

'क्यों परिहास कर रहे हो, चंद्रदेव? यहां दिवाला निकल रहा है आप दिवाली की बात कर रहे हैं.' मैंने फिर कहा, 'जिनके पास लक्ष्मी हैं उनकी तो रोज

दिवाली होती है.'

'हम तो सबको बराबर चांदनी देते हैं, वरुण देव सब को पानी देते हैं, सूर्य देव सबको प्रकाश देते हैं, तुम लोग ऐसा कुछ क्यों नहीं करते कि सबको लक्ष्मी मिले?' चंद्र देव ने पूछा.

'महाराज, हमारे यहां अर्थ युग चल रहा है.' मैंने उत्तर दिया.

'यह अर्थ युग क्या होता है? ब्रह्मदेव तो बता रहे थे पृथ्वी पर कलियुग चल रहा है.' चंद्रमा ने पूछा.

'कलियुग का ब्रह्मदेव जानें, यहां तो सारे काम अर्थ प्रधान हो गये हैं. अर्थ के लिए आदमी कुछ भी कर सकता है. पानी हवा बेच सकता है, ज़हर बेच सकता है, हथियार बेचने के लिए आतिशबाजी कर सकता है, युद्ध कर सकता है. अब आपको क्या बतायें कब विश्व युद्ध हो जाए, कह नहीं सकते.' मैं बोला.

'यह अर्थ युग नहीं अनर्थ युग है, तुम्हारा भविष्य तो महाकाल के हाथ में है.' चंद्रमा ने कहा.

'प्रभु, हम क्या कर सकते हैं.' मैंने हाथ जोड़कर पूछा.

'तुम क्या कर सकते हो, आनंद करो. जो करना है, महाकाल को करना है. मेरे जाने का समय हो गया है, सूर्य देव आते होंगे. हम प्रकृति के नियमों से बंधे हैं, प्रकृति के अनुसार चलते हैं. तुम भी चलो.' कहते हुए चंद्र देव जाने लगे.

'अरे! रुकिए प्रभु, एक सेल्फी हो जाए सोशल मीडिया में पोस्ट कर दूंगा, वायरल हो जायेगी...' कहते हुए मैंने चंद्रमा के साथ मोबाइल से सेल्फी ले ली.

'कुछ नहीं आयेगा, मैं प्रकाश पुंज हूं.' मैं कुछ कहता उसके पहले ही चंद्र देव अंतर्ध्यान हो गये. ❑

'वेबिनार युग' में

आज 'वेबिनार' की संस्कृति है, जहां सब कुछ 'साइबर स्पेस' में है. कोरोना के कारण साहित्य 'रीयल' की जगह 'वर्चुअल' बना जा रहा है. इस 'ऑनलाइन' जगत में न चाय है, न समोसा. न श्रोता हैं, न दर्शक. न ताली-न गाली, न भीड़-भड़क्का, न शोर-शराबा. न कोई लाग-डांट, न कोई काट-मार, न उठा-पटक, यहां सब कुछ बच्चों की तरह एकदम शिष्ट है! यह भी कोई साहित्य हुआ? अरे, जब तक विवाद नहीं, तब तक साहित्य नहीं. साफ़ है, सेमिनारों के दिन गये, ये वेबिनार के दिन हैं. कोरोना ने साहित्य को 'सेमिनार युग' से निकालकर 'वेबिनार युग' में पहुंचा दिया है! **– सुधीश पचौरी**

कहानी

आवाज़, जो सिमटकर रह गयी

● शबनम कुमारी

मैं मंजरी हूं– एक गूंगी युवती! हृदय में भाव उभरकर आंखों में छा जाते हैं, मगर आंखों की भाषा कोई पढ़ न सका, क्योंकि किसे इतनी फुर्सत है कि कोई मेरी आंखों में झांकता! मस्तिष्क में विचार उभरते हैं, मगर आवाज़ सिमटकर अंत:मन में रह जाती है. अपनी आंखों से दुनिया देखती-देखती अब थक गयी हूं, मगर ईश्वर से प्रार्थना है कि वे मुझ में साहस भरें ताकि लोगों की क्रूरता देखने में मुझे कोई कष्ट न हो.

तब मैं ऐसी नहीं थी, जब सात वर्ष की थी. मेरी आवाज़ की गूंज से सभी चौंक जाते थे. मां चिढ़कर कहती थी– 'काम से करो या न करो, आवाज़ से खानदान का नाम ज़रूर रोशन करोगी! बाप-रे-बाप! कंठ में छेद के बदले भोंपा लगा हुआ है! याद भी नहीं कि क्या खाकर इसे पैदा की थी!'

गाने का बहुत शौक था, किंतु मेरी बेसुरी आवाज़ से तंग आकर सभी मुझे डांटते थे, मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता. छोटी थी, मान-सम्मान के विष से परे थी. मेरे बेसुरे गाने को सुनकर मेरी बुआ ने एक दिन मां पर कटाक्ष किया– 'क्यों भाभी, आप गवैया खानदान से हैं क्या? क्योंकि इसमें गाने का जो शौक है, वह हमारे खानदान से तो नहीं मिला.'

बुआ की कटाक्ष बातें, तीर के तरह मां के हृदय में चुभ गयीं. मायके पर कटाक्ष! कोई औरत भला कैसे सह सकती है! मां का चेहरा तमतमा उठा. आंखों में छाये गुस्से को कोई देख न ले, इसलिए दूसरी ओर नजरें फेरकर धीरे से बोली– 'गवैया खानदान की होती तो यहां आकर चूल्हा-चौका क्यों करती? किसी रईस खानदान की बहू बनकर पलंग न तोड़ती?'

मुझे याद है. पूस की भयानक रात थी! सर्द हवा के प्रकोप से सन्नाटा भी कहीं जा छुपा था. शायद आधी रात बीत चुकी होगी. स्वेटर उतारकर मैं रजाई ओढ़े सोई थी, तभी मुझे मेरी गुड़िया की याद आयी, जो शाम में ही छत पर छूट गयी थी. फिर क्या था! कमरे का दरवाज़ा खोलकर बाहर आ गयी और छत पर पड़ी अपनी प्यारी गुड़िया को उठाती हुई प्यार से मैं उसे बोली– 'ठंड लग रही है न?' बोलना चाहिए था न कि मैं यहां हूं? अच्छा-

अच्छा रो मत, वो देखो– आकाश में चंदामामा!' तभी मैं चौंक पड़ी– एक बड़ा सा चमकीला तारा! प्रकाश पुंज! मैं खुशी से चीख पड़ी– वो देखो, लेकिन-लेकिन– इस प्रकाश पुंज ने अपने दर्शन के बदले मेरी आवाज़ छीन ली! मैं कोशिश करती रही, किंतु आवाज़, सिमट कर रह गयी. सर्द हवा का प्रकोप मेरी आवाज़ को झेलना पड़ा. हां, तभी से मैं कभी बोल नहीं पाती. इलाज हुआ; मगर– समय, श्रम और पैसे की बर्बादी! उस वक्त मैं छोटी थी, इसलिए मैंने कभी अनुभव ही नहीं किया कि अब भविष्य में मेरा अस्तित्व क्या होगा. सर्द के बाद, मौसम पर मौसम बदलते गये मगर मेरी तकदीर नहीं बदली.

खैर!– बालमन को जो चाहिए था, मुझे मिल रहा था, हां एक कमी रही कि मेरे भाई-बहन की पढ़ाई जिस प्रकार हुई, मैं नहीं पढ़ पायी. बस अक्षर ज्ञान तक सीमित रही. स्कूल खुशी-खुशी जाती, मगर मेरा मन रो उठता, क्योंकि बच्चे मुझे चिढ़ाते थे. वे मेरा उपहास करते और मैं उन्हें दीन आंखों से देखती रहती. मन-ही-मन कहती, मैं भी तुम्हारे साथ खेल सकती हूं, हंस सकती हूं, मगर-उनकी बाल उच्छृंखलता में मेरी भावनाओं का कोई स्थान नहीं था. अंतत: स्कूल जाने की इच्छा भी समाप्त हो गयी और यहीं से मेरी पढ़ाई में पूर्ण विराम का चिह्न लग गया. तब से घर में ही मगन रहने लगी. मुझे गाना सुनने और गाने में बड़ी रुचि थी. खेलते-खेलते मैं भूल जाती कि मेरी आवाज़ अब सिमट कर रह गयी है, इसलिए मस्तिष्क से शब्द सही निकलते, मगर कंठों से निकलते ही मैं गोंगियाने लगती. मेरे गाने को सुनकर पहले जो मुझ पर नाराज होते थे, अब खिलखिलाकर हंस देते. मैं भी हंस देती, मगर मां-पिता जी की आंखें नम हो जातीं. घबराकर मैं गाना बंद कर देती और आंखें फाड़-फाड़ कर इशारे में पूछती– 'क्या मेरा गाना अच्छा नहीं लग रहा?' मां और पिता जी की आंखों से आंसू निकलते देख मैं अपने मुंह पर हथेली रखकर इशारे से कहती– 'ठीक है, नहीं गाऊंगी, रो मत!' फिर उनके आंसू पोछने लगती. उस वक्त मां और पिता जी मुझे हृदय से लगाकर फूट-फूटकर रो पड़ते.

मेरे गूंगेपन से एक फायदा मुझे हुआ कि 'मैं अपने माता-पिता की लाडली हो गयी. मैं यह नहीं कहूंगी कि वह मेरे प्रति उनकी सहानुभूति थी, क्योंकि, अपने बच्चों के प्रति कोई भी माता-पिता सहानुभूति नहीं दिखा सकते. आधार वही हो सकता है, मगर रूप होगा प्रेम का. उनके लाड़-प्यार में मैं फूली रहती, अन्य भाई-बहनों से अपने आप को श्रेष्ठ मानती. आये दिन गोंगिया-गोंगिया कर उनसे झगड़ा कर लेती, पीट भी देती. मेरे भाई-बहन रो-रोकर अपनी फरियाद मां या पिता जी को सुनाते, जो

सही रहते, मगर जब मैं अपनी आंखों को गोल-गोल घुमाकर सिर हिलाकर 'नहीं' कहती, तो दोनों मेरे भाई-बहन पर बरस पड़ते– 'तुम लोग इसके दुश्मन हो? यह बोल कर अपनी बात बता नहीं सकती तो क्या? हरवक्त इसकी शिकायत करते रहोगे? जा भाग!'

> **काश! मैं गूंगी न होती, तब दरवाज़े पर खड़ी होकर भी आग लगने की बात को चिल्लाकर कहती तो कोई राही भी मेरी मदद कर देता; मेरी बहन जीवित रहती.**

मैं गद्‌गद हो उठती. मां के सामने तो गम्भीर बनी रहती, मगर बाद में अपने भाई-बहनों को देखकर इशारे से उनका मजाक उड़ाती. मगर सच कहती हूं, मुझे अपने भाई-बहन से बहुत प्रेम है, उस समय भी था. मैं ऐसा इसलिए करती थी, ताकि मैं विशेष बनी रहूं. वैसे माता-पिता के प्यार ने मुझे ज़िद्दी बना दिया था. हां, एक बात याद आती है. मेरी बहन जब भी किसी बात के लिए ज़िद करती थी तो मां डांटकर कहती थी– 'पराये घर जाना है, ऐसी ज़िद्दी रहोगी तो तुम्हारा परिवार कैसे चलेगा?' लेकिन– मेरी ज़िद पर उन्होंने कभी कुछ ऐसा नहीं कहा. क्या उन्हें पहले से ही पता था कि मेरा कोई पराया घर नहीं होगा? मुझे वहां नहीं जाना है? लेकिन –अंत:मन में आज एक टीस उठती है– यह तो मेरा अपना घर है न!–फिर आज यह घर पराया क्यों हो गया? पराये घर भी नहीं गयी और अपना घर भी पराया हो गया– कैसी विडम्बना है!

पढ़ाई के क्षेत्र को छोड़कर, मेरा गूंगापन मेरे बचपन पर हावी नहीं हुआ. मेरे परिवार जन, या आस-पास के लोग मेरी बातों को इशारे से समझने लगे थे. हां, कभी-कभी इशारे से झगड़ा करती, तो लोग बुरा मानने के बजाए हंस देते. लेकिन– एक दुर्घटना ने मेरे बचपन को उद्वेलित कर दिया और छुटपन में ही मुझे अहसास दिला दिया कि मेरा गूंगापन कितना बड़ा अभिशाप है. बात उस समय की है, जब मैं नौ-दस वर्ष की थी. बड़ी बहन ही घर का सारा काम करती थी, मगर उसके पैर एक जगह नहीं जमते थे. जब तक आस-पड़ोस के घर में एक चक्कर नहीं लगा लेती– मानो भोजन ही नहीं पचता था. उस दिन भी ऐसा ही हुआ. मां बाज़ार गयी थी, और भैया-दीदी पढ़ने चले गये थे. शाम के चार बजे होंगे. पिता जी दफ़्तर में ही थे. बड़ी दीदी अंगीठी जलाकर पड़ोस में चली गयी. मेरी छोटी बहन जो पांच वर्ष की थी, मां की उतारी हुई साड़ी को लपेटकर खेलने लगी. उसके पास एक गुड़िया थी. खेल-खेल में एक कटोरी में थोड़ा दूध डालकर उसने कटोरी अंगीठी पर चढ़ा दी. कुछ ही समय बाद

गर्म कटोरी को अपने ऊपर लपेटी हुई साड़ी के पल्लू से उसे उतारने लगी, फिर क्या था– आग के घेरे में वह आ गयी. मैं दूसरे कमरे में थी. छोटी बहन को आग से लिपटी देखकर मैं दौड़कर पड़ोस में गयी और घबराकर इशारे में उन्हें बताने लगी. मगर, शायद मेरा अभिनय हास्यास्पद था इसलिए सभी हंसने लगे. एक ने तो यहां तक कहा– 'नाचना है तो खुशी से नाचो, इतना घबड़ा कर क्यों नाचती हो?' मेरी आंखें भर आयीं. मैंने इशारे से अपनी बात दोबारा बताने की कोशिश की, लेकिन किसी को समझ नहीं आयी. फिर, पड़ोस में रहने वाली मामी का हाथ पकड़ कर, अपने घर ले जाने के लिए उन्हें खींचती हुई चीखने लगी. मेरे चेहरे का भाव और आंखों में भय-सिक्त आंसू देखकर वे लोग कुछ गम्भीर हो गये. मुझे लगा कि अब वे मेरी मदद ज़रूर करेंगे, लेकिन इतना समय नहीं था कि उन्हें फिर से इशारे में कुछ बताती, इसलिए वहीं खड़े एक दूसरे जन का भी हाथ मैंने पकड़ा और खींचती हुई आगे बढ़ी. वे लोग भी आशंकित होकर मेरे साथ मेरे घर आ गये. मेरी छोटी बहन अभी भी आग से लिपटी, ज़मीन पर बुरी तरह लोट रही थी. दोनों जनों ने शोर मचाया, लोग दौड़े आये, आग बुझायी गयी, —लेकिन तब तक उसकी जीवन ज्योति बुझ गयी!

घर में मातम छा गया. रोना-चिल्लाना चलता रहा, और मैं! अपने दुर्भाग्य को कोसती रही– 'काश! यदि मैं गूंगी न होती, तब दरवाज़े पर खड़ी होकर भी आग लगने की बात को चिल्लाकर कहती तो कोई राही भी मेरी मदद कर देता; मेरी बहन जीवित रहती, इतनी दर्दनाक मौत न मरती! उसी दिन मुझे आभास हुआ कि 'मैं गूंगी हूं.' गूंगापन का ठप्पा मैंने अपने आप पर स्वयं ही लगा लिया.

समय बीतता गया. दो भाभियां आ गयीं. दोनों बड़ी बहनों की शादी भी हो गयी. अब घर के सारे काम की ज़िम्मेदारी मुझ पर आ गयी. एक छोटी बहन थी, वह पढ़ाई में लगी रहती. घर के काम से निपटकर मैं सिलाई-बुनाई-कढ़ाई में लगी रहती. बड़े मन से मैंने कई साड़ियों में कढ़ाई की– इस सुखद उम्मीद से कि अब तो शादी की बारी मेरी है– इन साड़ियों को अपने साथ ले जाऊंगी. वसंत की मनमोहक हवा, मेरे हृदय के तार को छेड़ जाती, गर्मी की प्रचंड उष्मा भी मेरे सुखद अहसास को छू नहीं पाती. शरद की सुनहरी धूप भी हिय में उष्मता भर देती. बरसात की टपकती बूंदों का स्पर्श मनभावन लगने लगा. मिट्टी पर गिरते ही सोंधी महक नासिका से होती हुई आंखों में छा जाती और एक सुखद अहसास को ज़ब्त करने के लिए पलकें स्वतः मूंद जाते. फूलों की खुशबू से मन मदमस्त हो उठता. उन्हें खिले हुए देखकर अधर पर मुस्कान

छा जाती.

उमंग की अदृश्य तरंगें मन में नित्य उठतीं, हृदय का सितार बज उठता और मूक गीत स्वत: कानों में गूंजने लगते, जिसके स्वर से स्वर मिलाने की उत्कंठा जागृत हो जाती और तब! मैं भूल जाती कि मैं गूंगी हूं, गा नहीं सकती. मेरे भाव खिलने लगे थे, लेकिन देखा कि मेरे बीस की दहलीज को पार करने के बाद, मेरे पिता जी का चेहरा मलिन हो गया. मां की आंखों में दीनता छा गयी, कभी-कभी तो टकटकी बांधकर वह मुझे निहारती भी. मेरे उत्कंठित भाव को वह देख न ले, इसलिए मैं ही वहां से हट जाती, लेकिन जब कभी मुझे दर्पण के सामने खड़ी देखती, उसे देखकर मैं शरमा जाती. मैंने देखा था, शादी के पूर्व मेरी दोनों बहनें भी जब कभी दर्पण में अपने आप को निहारती, मां हंस देती थी, भाभियां भी मज़ाक करती– 'क्या हो रहा है जी? अब यहां रहने की इच्छा नहीं है क्या?'

'धत् भाभी!' –शरमाकर वे वहां से मुस्कराती हुई चली जातीं. लेकिन अब? मुझे खड़ी देखकर न मां को हंसी आती न भाभियां मज़ाक करतीं, बल्कि कहतीं– 'मंजरी, नाश्ता बना दो, भैया आते ही होंगे या फिर-किसी काम में लगाकर मुझे दर्पण के सामने से हटा देतीं. उल्लास के खिले फूल कुम्हला जाते और मैं चुपचाप अपने काम में लग जाती, लेकिन आशा बंधी रहती– 'कोई किसी का भाग्य नहीं जानता. हो सकता है—!'

तब मुझे अपनी भाभियों पर गर्व होता था. मेरा कितना हित चाहती हैं. सोचती– 'वैसे– जो कह रही हैं, ठीक ही तो है.' लेकिन अब ध्यान आता है– कि उनकी सोच में कितना स्वार्थ भरा था.

मेरे पिता जी ने बहुत प्रयास किया कि मेरी शादी हो जाए. पंडित से पूछ कर जंतर तक पहनाया, किसी ने कहा शुक्रवार का व्रत करे, किसी ने बृहस्पतिवार को व्रत रखने को कहा. आस-पड़ोस के लोग की सहानुभूति भी मेरे साथ थी. कमली की मां ने बताया– 'एक लड़का है, लेकिन उसके दो बच्चे हैं. उम्र कोई पैंतीस के आस-पास है. उसकी पत्नी चल बसी है, कहें तो उससे बात चलाऊं?'

मां से पहले ही बड़ी भाभी बोल पड़ीं– 'नहीं, बाईस वर्ष की लड़की की शादी पैंतीस वर्ष के मरद से होगी? मंजरी कोई बोझ है क्या, जिसे जहां-तहां उतार फेंकूं?'

भोलू की चाची भी दया में पीछे नहीं रही. बोली– 'मेरे मायके में मुंहबोला भाई है. पहली पत्नी से संतान सुख प्राप्त न हुआ इसलिए दूसरी शादी करना चाहता है लेकिन–दिक्कत यह है कि पत्नी रहते हुए एक शादीशुदा को अपनी बेटी देने को

कोई तैयार ही नहीं है. कहें तो बात करूं? मंजरी राज करेगी, राज! घर में दाई-नौकर सभी लगे हैं और— !'

'और क्या चाची?' –उन्होंने बात काटते हुए कहा– 'मंजरी कोई मशीन है, जो केवल बच्चा जनने के लिए ब्याही जाए? पहली पत्नी के रहते न इसे प्यार मिलेगा, न सम्मान! और नौकर-दाई, धन-दौलत भी किस काम के? मालकिन तो बनी रहेगी इसकी सौत ही न!'

मां चुप रही. उसकी अपनी मजबूरी थी. पिता जी की आय बिल्कुल साधारण थी और परिवार बड़ा. अब तो सेवानिवृत्त भी हो चुके थे. इस स्थिति में वे अपने दोनों बेटों पर आश्रित हो गये थे, और दोनों बेटे–! बहुओं के पाश में बंधे थे. फिर क्या था! मेरे भाग्य के निर्णय का ठेका उन्होंने अपनी बहुओं को सौंप दिया.

तब मुझे अपनी भाभियों पर गर्व होता था. मेरा कितना हित चाहती हैं. सोचती– 'वैसे– जो कह रही हैं, ठीक ही तो है.' लेकिन अब ध्यान आता है– कि उनकी सोच में कितना स्वार्थ भरा था.

मुझे विश्वास था कि मेरी भी शादी वैसे घर में ही होगी, जैसे मेरी बहनों की हुई थी. इंतज़ार करते-करते पांच वर्ष बीत गये. मैं आशा भरी नज़रों से अपनी भाभियों को देखती रही और उदासी भरी नज़रों से मां-पिता जी को. इन पांच वर्षों में मेरी छोटी बहन के पैर उस दहलीज को स्पर्श करने लगे, जिसे मैं छोड़ चुकी थी. मेरे अदृश्य पद-चिह्नों पर वह पैर रखने लगी. भगवान से मैंने प्रार्थना की– 'इसके उत्कंठित मन को खिला रखना, मुरझाने न देना.' वैसे, मैं समझती हूं कि भगवान से ऐसी विनती करना, व्यर्थ था. अगर वे सच में सुनते, तब मेरी प्रार्थना न सुनते? इंसान को क्या कहूं! भगवान होकर वे मेरी भावना न समझते? वैसे भी, ब्याह उसका क्यों न होता? वह मेरी तरह गूंगी तो थी नहीं!

और एक दिन– सच्चाई मैं जान रही थी, लेकिन सामना करने के लिए साहस जुटाना कठिन हो रहा था. सच्चाई यह थी कि मेरी छोटी बहन का विवाह तय हो गया था. जानकर अच्छा लगा, लेकिन मेरा अंत:करण स्वयं के लिए सिसक उठा. मेरी मृत उत्कंठा को कोई देख न ले, खासकर मेरे माता-पिता, इसलिए अपनी वेदना पर मैंने रंगीन मुस्कान की चादर डाल दी थी. सभी के साथ मैं भी हंसती. मेरी दोनों बहनें आयीं. शादी में खूब नाच-गाकर चली गयीं, किंतु मेरे लिए उनके चेहरे पर विषाद की हल्की रेखा भी नहीं उभरी! शादी के बाद छोटी बहन ससुराल चली गयी. कई दिनों बाद तक मां फूट-फूटकर रोती रही. भाभियां सांत्वना देतीं– 'यही तो रीत है मां जी, बेटी को तो एक दिन जाना ही होता है.' लोग समझते कि वह अपनी छोटी बेटी के जाने पर रो रही

है, लेकिन मैं सच्चाई समझती थी– 'वह छोटी बेटी के जाने पर नहीं, बल्कि मेरे नहीं जाने पर बिलख-बिलख कर रो रही थी, आखिर मैं भी तो उनकी बेटी थी! मां के मर्म में मेरे लिए पीड़ा थी तो मेरे अंत:मन में उनकी भावना समाहृत नहीं होती?'

सच कहा जाए तो छोटी बहन की शादी के बाद मैंने मां-पिता जी को खुलकर हंसते नहीं देखा. हां एक परिवर्तन देखने को मिला कि दोनों पूजा-पाठ में लीन हो गये. अब घर की ज़िम्मेदारियों से मुक्त हो, बस भजन-कीर्तन में समय बिताने लगे. मैं नहीं जानती कि यह संसार से विरक्ति का रास्ता था या पलायन का; मगर इतना जानती हूं कि अपनी लाडली बेटी को कभी भी उन्होंने अपने से अलग नहीं किया.

अभी भी पिता-जी मुझे जानबूझ कर छेड़ते, झगड़ने का अभिनय करते और जब मैं रूठ जाती, तो मुझे मनाते. झूठा झगड़ा और बनावटी छेड़छाड़! इसी में मेरा कुरूप जीवन घिरा रहा. घर में दोनों भैया के बच्चे थे. बहनें भी आती रहतीं. उनके बच्चों से भी घर गुंजित रहता. छोटी बहन की गोद भी भर गयी थी. मां-पिता जी नाती-नतनी, पोता-पोती से घिरे रहते, मगर उनके हृदय में एक कोना बिल्कुल सुनसान था, जहां मैं अकेली बैठी थी.

यही दुख मां की मृत्यु का कारण बना. मुझे याद है. वह बीमार भी नहीं थी. सुबह पूजा करने के बाद उसने मुझे अपने पास बुलाया. पास आकर मैंने इशारा से पूछा– 'क्या बात है?'

उसने सिर हिलाकर कहा– 'कुछ नहीं.' इशारा करके मुझे अपने पास बैठने को कहा. मैं बैठ गयी. मां मुझे टकटकी बांधकर देख रही थी, तभी पिता जी की आवाज़ से उसकी तंद्रा टूटी. पिताजी अपने रूमाल के बारे में पूछ रहे थे, जिसे मैंने रखा था. पिता जी को रूमाल सौंपकर, मां को इशारे में बताया कि मैं रोटियां बना रही हूं, और मैं वहां से हट गयी. उसी दिन दोपहर के भोजन के बाद वह बैठी-बैठी बिस्तर पर गिर गयी. बस, कहानी समाप्त!

मां के बिछोह के दुख से मेरा हृदय टूटकर बिखर गया, मगर पिता जी का मुंह देखकर मैं साहसपूर्वक प्रत्येक टूटे खंड को जीवन-रस से जोड़ने का प्रयास करने लगी.

वर्ष भर बाद, घर में पूजा होने वाली थी. मेरी तीनों बहनें आयीं. मैंने कढ़ाई की हुई पांचों साड़ियां कांपते हाथों से बड़े प्यार से सहलाया. मेरी आंखें भर आयीं. अपने आंसू पोछकर, होंठों पर बनावटी मुस्कान बिखेरते मैंने पांचों साड़ियां भाभियों और बहनों को मैंने दे दीं. अब ये मेरे किसी काम की नहीं थीं. भाभी और बहनें खुशी से फूली न समायीं. पांचों जन मेरी कढ़ाई वाली साड़ी पहनकर चहक रही थीं और मेरी कलाकारी की प्रशंसा कर रही थीं. पिताजी से देखा न गया. मुझे देखकर

वे अपना सिर पीटकर रोने लगे. सभी ने यही समझा कि इस अवसर पर मां को याद कर वे बेचैन हो रहे हैं लेकिन, सच्चाई मैं जान रही थी. सभी उन्हें संभालने में लगे थे मगर मैं उनके आंसुओं का साथ दे रही थी.

पिता जी की तबीयत खराब रहने लगी थी. मेरे प्रति उनकी सोच और मां की कमी उन्हें अंदर-ही-अंदर खोखला कर चुकी थी. वे अस्पताल में भरती हुए. मुझे याद है– मेरा पूरा परिवार वहीं था. पिता जी ने दीन आंखों से सभी को देखकर धीरे से कहा– 'खुश रहना!' किंतु मेरी ओर देखकर उन्होंने ऐसा कुछ भी नहीं कहा, शायद इसलिए कि वे जानते थे कि खुशी मुझसे दूर है, फिर असम्भव आशीर्वाद क्यों देते! बस, नम आंखों से मुझे अपलक देखते हुए, हाथ जोड़कर कांपती आवाज़ में उन्होंने इतना ही कहा– 'मं–जरी! माफ करना' और फिर फूट-फूट कर रोने लगे.

मां की मृत्यु के पांच वर्ष पश्चात् पिता जी भी चल बसे. पिता जी के जाते ही दोनों भाइयों ने अपनी गृहस्थी अलग-अलग बसा ली. और मैं? मैं बेआश्रित नहीं हूं. दोनों भाभियों के बीच इस बात के लिए कलह होता है कि मंजरी मेरे पास रहेगी! बहनों की अपनी दुनिया है. भाभियों के पास आती हैं, मिलती हैं, खाती-पीती हैं, और खुशी-खुशी चली जाती हैं. मैं सोचती हूं, क्या वे मेरी वही बहनें हैं, जिसके साथ मैंने अपना बचपन बिताया है? भैया की क्या कहूं? छोटे भइया के पास रहती हूं तो बड़े भइया आकर मुझे कह जाते– 'सुन मंजरी, काम से हमलोग बाहर जा रहे हैं, जरा समय निकालकर रोटियां बना देना.'

बस! सुनते ही छोटी भाभी का पारा चढ़ जाता. भइया के आते ही पैर-पटककर बोलतीं– 'बड़े भइया को बोलने का तरीका नहीं है! मंजरी क्या उनकी नौकरानी है? हक से बोल जाते हैं– जरा रोटियां बना देना!' फिर चिढ़कर मुझे बोलती हैं– 'मंजरी, तुम वहीं रहो. कोई ठीक नहीं! कल मोहल्ला कहे कि तुम्हें रखकर मैं खटवाती रहती हूं!'

दो चार कपड़े हैं, उन्हें तह लगाकर रखती हूं और बड़े भइया के घर चली जाती हूं, मगर ज़्यादा नहीं, सप्ताह भर बाद ही छोटे भइया आकर कहते हैं– 'मंजरी तेरी भाभी की तबीयत कुछ ठीक नहीं है, दो-चार दिनों के लिए जरा बरतन-रसोई देख लेना.'

सुनते ही बड़ी भाभी के तलवे का लहर सिर पर चढ़ जाता है. गुस्से में तमतमाकर बोलतीं– 'बीमार नहीं होगी, बस मंजरी को पास बुलाने का बहाना है. जा भई! उन्हीं लोग के पास रहकर उन्हें आराम दो.'

फिर– वहां से अपने कपड़े लेकर छोटे भइया के पास आ जाती हूं. दोनों भाभियां एक दूसरे को देखते ही भृकुटी

तान लेती हैं और मैं दोनों की सुनती हूं, और देखती रहती हूं, क्योंकि मेरे दोनों कान और आंखें सलामत हैं. अब तो इशारों से भी कुछ नहीं बोलती, क्योंकि मेरे इशारे भी सिमटी आवाज़ों में सिमट गये हैं.

लेकिन नहीं– ! अब सोचती हूं– खुशी न सही, संतुष्टि तो पा लूं! सांसारिक सुख ना सही, आनंद तो पा सकती हूं न! मैंने निश्चय कर लिया है, अपनों को छोड़कर परायों की दुनिया में जाऊंगी– वहां–जहां खून का कोई रिश्ता नहीं–यानी– 'वृद्धाश्रम में'. अभी मैं युवती हूं; शरीर थका नहीं है, बस सोच ने अपना दायरा बना लिया है, जिसे अब तोड़ दूंगी. वहीं जाकर सेवा कार्य में लगूंगी, उन्हें सहारा मिलेगा और मुझे संतुष्टि. शायद यही संतुष्टि, खुशी में भी बदल जाए! और– फिर एक दिन मेरा भी तो यहीं वास होगा! आवाज़ें तो सिमट कर रह गयीं, मगर अपनी भावना का प्रसार यहीं कर सकूंगी. ❑

रेडियो पर निरालाजी

आल इंडिया रेडियो का वह बी.बी.सी युग था– अर्थात 'बुखारी ब्रदर्स युग'. रेडियो में उर्दू पृष्ठभूमि के लोगों की भरमार थी. तब रेडियो में 'शहज़ादे रामचंदर'. जलना-अफरोज़ होते थे, 'राजा दुशियंत' 'परकट' होते थे. रस माहौल में एक बार तब के जाने-माने साहित्यकार बलभद्र प्रसाद पढीस के कहने पर निरालाजी रेडियो पर कविता पढ़ने के लिए राजी हो गये. पाठ करवाने की ज़िम्मेदारी किन्हीं अयाज़ साहब को मिली थी. प्रसारण लाइव था. अयाज़ साहब ने शुरू किया, 'अब आप हिंदी में कविता-पाठ समाअत फरमाइए, कवी हैं सूरिमाकांता तिरपाठा निराली.' इसके बाद निरालाजी का काव्य-पाठ सुनाई देना था, पर उसकी जगह सुनाई दी हुच्च हुच्च की आवाज़ें. ड्यूटी अफसर स्टूडियो की तरफ भागा. वहां जो हो रहा था, उसे देखकर उसके होश उड़ गये. उसने किसी तरह फिलर बजवाया. सब स्टूडियो की तरफ भागे. वहां भीमकाय निराला ने अयाज़ साहब की गरदन दबा रखी थी. निराला जी गुस्से में तमतमा रहे थे. पढ़ीस साहब ने किसी तरह अयाज़ साहब को मुक्त करवाया. क्या हुआ था, पूछने पर निरालाजी पढ़ीसजी से अवधी में बोले, 'तुमसे कहा रहय कि हमका रेडियो-फेडियो ना लयि चलउ. ऊ गदहा हमका तिरपाठा निराली कहिस'. पढ़ीस जी ने हाथ जोड़ कर माफी मांगी. निराला जी आखिर शांत हुए, पर बिना कुछ सुनाये वहां से चले आये!

(किस्सा लखनऊवा पुस्तक से)

दीवाना हुआ बादल...

● अजित वडनेरकर

आबादी यानी इन्सानी बसाहट से बादलों का कोई रिश्ता है? स्वार्थ के नजरिए से देखें तो है वर्ना नहीं. इन्सान को जीने के लिए पानी चाहिए और बादल पानी लेकर आते हैं अन्यथा बादलों का रिश्ता हरियाली से है; अर्थात जहां हरेभरे दरख्त आबाद होंगे, बादलों की मेहरबानी वहीं होगी. रेन फारेस्ट यानी वर्षावनों से यह साबित होता है. बादल धरती को हराभरा रखने के लिए बरसते हैं न कि शहरों को भिगोने के लिए. इसीलिए हरियाली का रिश्ता पानी से जुड़ता है. उर्दू-फ़ारसी में बादल को अब्र कहा जाता है. **बादल** शब्द बना है संस्कृत के **वारिद** शब्द का वर्णविपर्यय होने से. जिस तरह बादल शब्द का अर्थ-जल के वाहक या पानी देने वाले (वारि + द = वारिद) उसी तरह अब्र की अर्थव्त्ता में भी यही भाव है. संस्कृत में पानी के लिए एक धातु है **अप्**. फ़ारसी में पानी को **आब** कहते हैं. संस्कृत के **अप्** से इसकी समानता पर ध्यान देना चाहिए.

संस्कृत में बादल को **अभ्र** कहा जाता है जिसका उच्चारण **अब्र** के बहुत करीब है. आप्टे के कोश के अनुसार अभ्र बना है **अप्** + **भृ** से जिसका अर्थ है बादल, आकाश, नभ या शून्य. मराठी में इसी **अभ्र** का रूप होता है **आभाळ**. स्याह काले बादल को संस्कृत-हिंदी में **नीलाभ्र** कहते हैं. यहां नीला का अर्थ काला ही है. वे बादल जो बरसते हैं, काले ही होते हैं. संस्कृत में पानी के लिए एक शब्द हैं **अप्**. संस्कृत में **द** वर्ण का अर्थ है– कुछ देना या उत्पादन करना. चूंकि पृथ्वी पर पानी बादल लेकर आते हैं इसलिए **अप्** + **द** मिलकर बना **अब्द** यानी पानी देने वाला. इस **अप्** या **अब्द** से इंडो–इरानी भाषा परिवार में कई रूप नज़र आते हैं. पानी के अर्थ वाला संस्कृत का **अप्** फ़ारसी में **आब** बनकर मौजूद

है. हिंदी-उर्दू में जलवायु के अर्थ में अक्सर आबोहवा शब्द का भी इस्तेमाल किया जाता है. यही नहीं, जो **अप्** बादल के अर्थ में संस्कृत में **अब्द** बना हुआ है, उसी **अप्** से **अभ्र** बना, वही फ़ारसी में **अब्र** की शक्ल में हाज़िर है. एक शेर देखिए–दो पल बरस के अब्र ने दरिया का रुख किया, तपती ज़मीं से पहरों निकलती रही भड़ास.

संस्कृत में **अभ्र** का एक अर्थ जाना, घूमना, भटकना भी है. गौर करें, बादल कहीं से उठते हैं और न जाने कहां-कहां की आवारगी, यायावरी करते हुए कहां बरस पड़ते हैं. निदा फाज़ली साहब का मशहूर शेर है : 'बरसात का बादल तो, दीवाना है क्या जाने/किस राह से बचना है, किस छत को भिगोना है.' कालिदास ने **मेघदूत** में इसीलिए बादल को दूत बनाया है क्योंकि वह यायावर है, घुमक्कड़ी उसके स्वभाव में है. फ़ारसी का **आबरू** (इज़्ज़त) लफ़्ज़ और आबजू (नहर, नदी या चश्मा) शब्द भी इससे ही निकले हैं. गौरतलब है कि फ़ारसी के आबजू की तरह संस्कृत में भी अब्जः शब्द है जिसका मतलब पानी का या पानी से उत्पन्न होता है. बसावट के अर्थ में हिंदी-उर्दू-फ़ारसी में आम शब्द है आबाद या आबादी. इसका मतलब जनसंख्या या ऐसी ज़मीन है जिसे जोता और सींचा जाता है. सिंचाई के लिए पानी ज़रूरी है. ज़ाहिर है, आबाद या आबादी वहीं है जहां पानी है. इसे यों समझा जा सकता है कि जहां आब है, वही जगह आबाद होगी.

जल प्रदान करनेवाला के अर्थ में बादल के कई नाम हैं, जैसे–**वारिधर** यानी पानी को धारण करनेवाला. जल का वाहन होने के कारण इसका एक नाम **वारिवाह** भी है. नाथ का अर्थ है– स्वामी, **वारिनाथ** का अर्थ हुआ– जल का स्वामी. यह नाम इंद्र का विशेषण भी है. बादल को बलाहक भी कहते हैं. जलद यानी जल प्रदान करनेवाला. नीरद भी इसी श्रेणी में आता है. नीरधर पयोधर का अभिप्राय भी स्पष्ट है. **पयस्** का अर्थ है पानी जिससे **पयोधर** बना है. संस्कृत में **पयोधि** का अर्थ **समुद्र** होता है.

(शब्दों का सफ़र, राजकमल प्रकाशन, से साभार)

पुनर्दृष्टि इतिहास के एक पन्ने पर

यह शायद एक विचित्र संयोग ही था. किताबों की अलमारी में किताबें आगे-पीछे करते अचानक उस दिन एक किताब दिख गयी– जिन्ना एक पुनर्दृष्टि. वीरेंद्र कुमार बरनवाल द्वारा लिखित यह पुस्तक बरसों पहले पढ़ी थी. लेखक के गहन अध्ययन और निर्भीक चिंतन ने तब काफी प्रभावित किया था. अब जब मैंने पुस्तक खोली तो लाल स्याही से किये बरनवाल जी के हस्ताक्षर कुछ कहते लग रहे थे. यह हस्ताक्षर उन शब्दों के नीचे थे, जो उन्होंने पुस्तक की प्रति भेंट करते हुए मेरे बारे में लिखे थे. वह पढ़ते हुए अचानक ही मैं पंद्रह साल पीछे पहुंच गया था, जब बरनवाल जी ने पुस्तक मुझे भेंट की थी. तब वे मुम्बई में आयकर आयुक्त थे. पर उनके समूचे व्यक्तित्व में जैसे अफसरी के लिए कहीं कोई जगह थी ही नहीं. धीर-गम्भीर वे अवश्य थे, पर जब एक बार खुल जाते थे तो फिर किसी तरह की पर्दादारी बचती नहीं थी. उनके व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों से प्रभावित था मैं. उस दिन जब यह किताब फिर से हाथ में आयी तो अचानक मुझे लगा था, बरनवाल जी से कुछ लिखवाना चाहिए 'नवनीत' के लिए. वे कुछ अस्वस्थ रहते

थे, यह मैं जानता था, पर उसके दूसरे ही दिन जब फेसबुक से यह समाचार मिला कि बरनवालजी नहीं रहे, तो मैं स्तब्ध रह गया था. रात को ही तो उनकी किताब के पन्ने पलट रहा था, और सबेरे-सबेरे यह...

बहुत कुछ याद आया था उस समय. ज़्यादा मिलना नहीं हो पाता था उनसे, पर जब भी मिलता था, वैचारिक दृष्टि से कुछ सम्पन्न होकर ही लौटता था. कुछ ही अर्सा पहले उनकी पुस्तक 'मुस्लिम नवजागरण और अकबर इलाहाबादी का गांधीनामा' के कुछ अंश 'नवनीत' में छपे थे. तभी उनसे बात हुई थी. बात नहीं, बातें कहना चाहिए. देश में चल रहे साम्प्रदायिक माहौल से लेकर गांधी के हिंद स्वराज तक की बातें. वर्तमान राजनीति से उभरी पीड़ा की बातें. हिंद स्वराज वाली अपनी

पुस्तक को लेकर वे काफी उत्साहित थे. देश में फैल रही कटुता और मानवीय रिश्तों में आ रही दूरियों से कुछ विचलित थी. जिन्होंने उनके द्वारा किये गये नाइजीरियाई कविताओं के अनुवाद पढ़े हैं, वे इस संदर्भ में उनके सोच और संवेदना को अनुभव कर सकते हैं.

एक आधार को लेकर किसी के पूरे व्यक्तित्व को नापने-तौलने में बरनवाल जी विश्वास नहीं करते थे और न ही बिना पर्याप्त सबूत के कोई निर्णय दे देना उन्हें स्वीकार था. उनकी जिन्ना वाली बहुचर्चित पुस्तक इस बात का प्रमाण है. इस पुस्तक में उन्होंने कई-कई कोणों से जिन्ना को देखने-समझने की कोशिश की है और वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि जिन्ना की गणना भारत के स्वतंत्रता-संग्राम के उन नायकों में होती है जो 'अपने समय के विश्व के कई महत्वपूर्ण व्यक्तित्वों की आभा फीकी कर देने की क्षमता रखते हैं.' निश्चित रूप से जिन्ना एक जटिल व्यक्तित्व थे. व्यवहार की नीरसता, भावना-शून्यता और राजनीतिक सौदेबाजी के कुटिल खिलाड़ीपन के कारण जिन्ना की छवि हमारे देश में एक खलनायक की ही है, पर सचाई इस बात में भी है कि एक समय वह भी था जब उनकी गणना नायकों में होती थी. गोपाल कृष्ण गोखले ने जिन्ना को 'हिंदू-मुस्लिम एकता का सर्वश्रेष्ठ राजदूत' कहा था. पर देश के विभाजन के लिए ज़िम्मेदार कहे जाने वाले जिन्ना की साम्प्रदायिकता भी इतिहास में चित्रित है. जवाहरलाल नेहरू को जिन्ना उस शख्स की याद दिलाते थे, 'जो अपने मां-बाप दोनों को कत्ल करके अदालत से इस बिना पर माफी चाहता है कि वह यतीम है.' जिन्ना को समझने के इन दो ध्रुवों के बीच वह जिन्ना है जिसकी खोज करने, जिसको समझने की एक महत्वपूर्ण कोशिश भी बरनवाल की इस पुस्तक में की गयी है. जितनी कुछ सामग्री एकत्र की जा सकती थी, उसके आधार पर लगभग चार सौ पृष्ठों में लेखक ने हमारे समय के इस जटिल व्यक्तित्व को समझाया है. यह कतई ज़रूरी नहीं है कि लेखक के निष्कर्षों से सहमत हुआ ही जाये, और आज जिस तरह का माहौल देश में बन गया है, उसमें तो किसी को समझने की कोशिश करने का अवसर ही न देने की प्रवृत्ति पनप रही है. जिन्ना के बारे में कुछ भी सकारात्मक कहना गलत समझे जाने के खतरे को जन्म देना ही है. पर इतिहास सिर्फ ब्यौरा नहीं होता. राजकमल प्रकाशन, दिल्ली द्वारा प्रकाशित यह पुस्तक एक गम्भीर अध्ययन की अपेक्षा करती है. महत्वपूर्ण लेखक के निष्कर्ष ही नहीं होते, निष्कर्षों तक पहुंचने की ईमानदार कोशिश भी होती है.

वीरेंद्र कुमार बरनवाल को श्रद्धांजलि स्वरूप अगले पृष्ठों में इस पुस्तक की भूमिका के कुछ अंश पढ़िए. ❑

किताब से

अतियों के बीच झूलता व्यक्तित्व

● वीरेंद्र कुमार बरनवाल
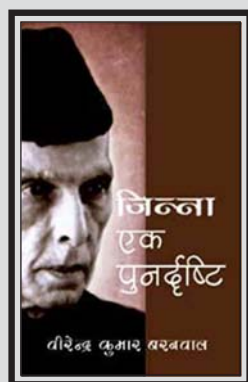
इतिहास सामान्यत: ग्लेशियर की अदृश्य मंथर गति से रेंगता हुआ चलता है, पर कभी-कभी उसमें प्रपात का आवेश-भरा वेग भी आ जाता है. कुछ ऐसा ही अप्रतिम वेग भारतीय उपमहाद्वीप के इतिहास की धारा में सन् 1937 से लेकर सन् 1947 के दौरान आया, जिसने विश्व के लगभग पांचवें हिस्से की नियति को बड़ी गहराई से प्रभावित किया. महात्मा गांधी के साथ ही इस कालखंड के नियति-पुरुष सिद्ध हुए कायदे आज़म मुहम्मद अली जिन्ना. भारत-विभाजन और पाकिस्तान के निर्माण में अग्रणी भूमिका के कारण जहां जिन्ना की छवि सामान्य भारतीय जन-मानस में एक दुर्दांत खलनायक की है, वहीं पाकिस्तान में उन्हें न केवल 'राष्ट्रपिता' का दर्जा हासिल है, बल्कि वहां उन्हें देवत्व-सा प्रदान कर लगभग पूजा जाता है. जिन्ना का राजनीतिक व्यक्तित्व इन्हीं दो अतियों के बीच झूलता रहा है.

साधारण भारतीयों के मन में जिन्ना की छवि एक निहायत नीरस, अंतर्मुखी, तार्किक, अधार्मिक, भावना-शून्य, मनहूस, हिसाबी, सिर से पैर तक पश्चिमी सभ्यता में रंगे, चोटी के वकील के साथ एक अपराजेय राजनीतिक सौदेबाज़ की रही है. जिन्ना के व्यक्तित्व की इन विशेषताओं को झुठलाना जहां निहायत दुश्वार है, वहीं मात्र इन्हीं विशेषताओं में उन्हें सीमित करना वस्तुत: सच्चाई से मुंह मोड़ना होगा. जिन्ना के जीवन और व्यक्तित्व के कुछ ऐसे पहलू हैं, जो बहुत कम उजागर हो पाये हैं. फलस्वरूप अक्सर उनका एकांगी मूल्यांकन ही हो पाया है.

जिन्ना के बारे में लिखना दरअसल उनके दो महान समकालीनों और प्रतिद्वंद्वियों, गांधी और नेहरू, पर लिखने से कई गुना

बड़ी चुनौती है. जहां गांधी और नेहरू का अपना स्वयं का लेखन अत्यंत विपुल और व्यापक है, वहीं उनके स्वयं के ऊपर समय-समय पर देश-विदेश में प्रारम्भ से आज तक लगातार लिखा जा रहा है. जिन्ना पर लिखना और उनके सम्बंध में एक समग्र समझ विकसित करना काफ़ी कठिन और जोखिम भरा काम है. इसका मुख्य कारण है कि जिन्ना ने न तो आत्मकथा और संस्मरण लिखे हैं और न ही नेहरू और गांधी की तरह समय-समय पर स्वयं अपने लेखन द्वारा अपनी राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक सोच को अभिव्यक्त करने की कोशिश की. विषयों पर पत्र-व्यवहार. उनका अपना व्यक्तिगत पत्र-व्यवहार अत्यंत दुखद रूप से नितांत सीमित है. उनके बारे में लिखे उनके समकालीनों के संस्मरणों और उनकी आत्मकथाओं और जीवनियों में उनके संदर्भ के आधार पर ही उन्हें समझने के प्रयास होते रहे हैं. पाकिस्तान में उन पर जो भी लेखन हुआ है, वस्तुतः वह संत-चरित सा ही है. उनके जीवन, व्यक्तित्व, कार्यों और उपलब्धियों को वस्तुनिष्ठ तथा आलोचनात्मक दृष्टि से देखने के प्रयास का उनमें त्रासद अभाव है. सौभाग्य से गहरे आदर, श्रद्धा और भक्ति के बावजूद गांधी और नेहरू के बारे में भारत में ऐसा नहीं हुआ. यहां उन्हें वस्तुनिष्ठता के साथ आलोचनात्मक दृष्टि से देखने के कई ईमानदार प्रयास हुए हैं. और अब तो उन पर बदले वातावरण में काफी बेरहमी से टीकाएं की जा रही हैं. उनके बारे में देश-विदेश में किसी भी अपमानजनक टीका-टिप्पणी से यहां अब कोई विचलित नहीं होता. इसे एक हद तक शुभ लक्षण भी माना जा सकता है. इससे निश्चय ही उन्हें समझने की एक बेहतर, स्वस्थ और निर्वैयक्तिक दृष्टि विकसित होने में मदद मिलेगी. कोई कितना भी महान हो, समय और इतिहास के पास उससे न्याय करने के अपने ढंग हैं.

जिन्ना हमारे देश के उस लम्बे और शानदार स्वतंत्रता-संग्राम के महानायकों में से एक हैं, जिसके कई व्यापक महाकाव्यात्मक आयाम हैं. भारतीय उपमहाद्वीप की जातीय स्मृति की जटिल रचनात्मकता को युगांतर तक संजोए यहां के दोनों महाकाव्ऐों, रामायण और महाभारत, के चरित्रों और घटनाओं की छाया और आलोक में इतिहास के निर्णायक संघर्ष, घात-प्रतिघात तथा सभ्यता के संकट-संक्रमण की व्याख्या और समझ की कोशिश भारतीय मनीषा लगातार करती रही है. सन् 1857 से सन् 1947 तक चले हमारे नब्बे वर्ष के स्वतंत्रता-संग्राम के समतुल्य किसी और देश का स्वतंत्रता-संग्राम नहीं है. इतनी लम्बी कालावधि और इतने विशाल भूखंड में इसकी व्याप्ति ही इसकी अद्वितीयता का एकमात्र कारण

नहीं है. इसका असली अनूठापन यहां की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और भाषायी अस्मिताओं और हितों के परस्पर टकराव और उनमें सामंजस्य के प्रयासों और उसके लिए ईमानदार-उत्कृष्ट नेतृत्व विकसित करने की उसकी क्षमता में है. इतने जटिल बुनावटवाले इस व्यापक और लम्बे संघर्ष के दौरान कम-से-कम डेढ़ दर्जन ऐसे महान और तेजस्वी व्यक्तित्व प्रकाश में आये जो अपने समकालीन विश्व के श्रेष्ठतम नेतृत्व से तुलनीय हैं. उनमें तिलक, गांधी, जिन्ना, नेहरू, भगत सिंह, सुभाष, पटेल और आज़ाद ऐसे दीप्त व्यक्तित्व हैं, जो अपने समय के दूसरे देशों के कई महत्वपूर्ण व्यक्तित्वों की आभा फीकी कर देने की क्षमता रखते हैं. ऐसे उदात्त तथा विविध-प्रकृति चरित्रों और घटनाओं का वृहत् संकुल हमें महाभारत में मिलता है. एक मुसलमान को लोग लगातार कोसते थे. गांधी और नेहरू के प्रति भी श्रद्धा और आदर के बावजूद कई लोग अक्सर कटु हो जाते थे. जिन्ना का नाम पहली बार सुना था पर गांधी और नेहरू के नाम सुभाष और जयप्रकाश के नामों के साथ घर में अक्सर सुनाई पड़ते थे. परिवार के प्रबुद्ध पुरुष सदस्यों के अलावा हमारी मां, नानी और दादी भी कभी-कभी उनके नाम लेती थीं.

मां बताती थीं, जैसे 'र' से राम और रावण, 'क' से कृष्ण और कंस, उसी तरह 'ग' गांधी और गवर्नमेंट अच्छाई-बुराई के पक्ष और प्रतिपक्ष थे. गवर्नमेंट से मां की मुराद अंग्रेज़ सरकार से थी. पिता दयारामजी 'भारत-छोड़ो' आंदोलन में जेल जाने और वहां के बारे में लोगों से चर्चाएं करते रहते थे. अत: पांच-छ: वर्ष की आयु से ही आज़ादी की लड़ाई के सम्बंध में चर्चाएं और जानकारियां कानों में पड़ती रहती थीं, जिनके केंद्र में गांधी, नेहरू और सुभाष होते थे. बाद में उनमें जयप्रकाश नारायण, डॉ. राम मनोहर लोहिया और आचार्य नरेंद्र देव के भी नाम जुड़ गये थे. इस पृष्ठभूमि में जिन्ना के साथ गांधी और नेहरू के लिए भी कटु वचन सिख व्यापारियों से सुनकर बालमन उन दोनों के प्रति श्रद्धा और आदरभाव के साथ उस कटुता की संगति नहीं बैठा पाता था. नौ-दस साल की उम्र में मैं साहित्यिक पुस्तकें पढ़ने लगा था. घर पर गांधीजी की जीवनी थी. उसे ध्यानपूर्वक पढ़ गया. पिताजी ने कुछ बहुत अच्छी पुस्तकें इकट्ठी कर रखी थीं. उनमें लुई फिशर की एक पुस्तक 'ए ग्रेंट चैलेंज' के हिंदी अनुवाद 'एक महान चुनौती' और रजनी पाम दत्त द्वारा लिखी साम्यवाद पर एक पुस्तक के हिंदी अनुवाद भी थे. 'एक महान चुनौती' में गांधी, नेहरू, पटेल, आज़ाद, जिन्ना, खान अब्दुल गफ्फार खां और अम्बेडकर पर बड़े दिलचस्प ढंग से लिखा गया था. जिन्ना के सम्बंध में

पहली झलक इसी पुस्तक में मिली थी. रजनी पाम दत्त की पुस्तक ऊपर से गुजर गयी थी.

कभी-कभी बातचीत के दौरान उनके बारे में जिस अधकचरे ज्ञान का परिचय कई अच्छे-खासे पढ़े-लिखे लोगों में देखने को मिलता था, उससे मैं भारी अचरज में पड़ जाता था.

कामचलाऊ अंग्रेज़ी भाषा की समझ ग्यारहवीं कक्षा में विकसित हो चली थी. पड़ोस में एक किराने की दुकान थी. सौदा बांधने और लपेटने के लिए वहां अंग्रेज़ी के पुराने अखबार और पत्रिकाएं थोक में आती थीं. दुकान के मालिक सीतारामजी पिता के मित्र थे. वह धीरे-धीरे मेरी अभिरुचियों से परिचित हो गये थे. वह स्वयं अंग्रेज़ी नहीं जानते थे. पर उन पुराने अखबारों में आज़ादी की लड़ाई से जुड़े नेताओं के चित्र देखकर वह समझ जाते थे कि उनमें उनसे सम्बंधित कोई सामग्री है. उन्हें वह अलग कर मुझे दे देते थे. उन्हें डिक्शनरी की सहायता से पढ़ता था. उनमें कभी-कभी भारत-विभाजन और उससे जुड़े व्यक्तियों के बारे में लेख भी होते थे. विभाजन और उसकी मांग करनेवाले मुस्लिम लीग के नेताओं के बारे में, जिनमें जिन्ना का प्रमुख स्थान होता था, मेरी प्राथमिक जानकारी के स्रोत यही पुराने अखबार थे. बाद में एम.ए. करने के पश्चात् जब अंग्रेज़ी भाषा की थोड़ी बेहतर समझ विकसित हुई तो स्वतंत्रता-संग्राम, देश-विभाजन और उससे जुड़े व्यक्तित्वों के सम्बंध में अंग्रेज़ी में पढ़ने का मौका मिला. विभाजन को लेकर लिखे गये यशपाल के उपन्यास 'झूठा सच', रामानंद सागर की पुस्तक 'और इंसान मर गया', अब्दुल्ला हुसैन के उपन्यास 'उदास नस्लें', मोहन राकेश की कहानी 'मलबे का मालिक' तथा खुशवंत सिंह के उपन्यास 'ट्रेन टू पाकिस्तान' ने मानव इतिहास की इस अभूतपूर्व भीषण त्रासदी के गहरे मानवीय पक्ष को समझने की अंतर्दृष्टि और संवेदना विकसित करने में भारी मदद की. विभाजन को लेकर लिखी गयी मंटो की छोटी-छोटी कहानियों, खासकर 'टोबा टेकसिंह' ने किशोर मन को कई-कई दिनों तक विकल करके रखा था. पाकिस्तान के कथाकारों की विभाजन को लेकर उर्दू और पंजाबी कहानियों के हिंदी अनुवादों को भी पत्रिकाओं में पढ़ने का मौका मिलता रहा. इन सबका समवेत प्रभाव यह पड़ा कि विभाजन, उसकी विभीषिका और उसकी समूची प्रक्रिया से जुड़े राजनीतिक व्यक्तित्व मेरे लिए दूर की चीज़ न होकर मेरे अपने ही मनोजगत के अविभाज्य अंग बन गये. और इनके केंद्र में जिन्ना का होना स्वाभाविक था.

सत्तर के दशक में लगने लगा कि

लोगों की रुचि गांधी में घटती जा रही है. कभी-कभी बातचीत के दौरान उनके बारे में जिस अधकचरे ज्ञान का परिचय कई अच्छे-खासे पढ़े-लिखे लोगों में देखने को मिलता था, उससे मैं भारी अचरज में पड़ जाता था. ऐसी स्थिति में जिन्ना के बारे में किसी समझ और जानकारी की उम्मीद निरर्थक थी. जिन्ना के सम्बंध में वैसे भी उनके जीवनकाल और उसके बाद भी देश-विदेश में जानकारी का स्तर वही नहीं था, जो गांधी और नेहरू के सम्बंध में था. मित्रों के बीच पाकिस्तान और साम्प्रदायिकता पर चर्चा के दौरान जिन्ना का प्रसंग आना अनिवार्य था. साठ के दशक में विभाजन को लेकर मेरे विचार मौलाना आज़ाद की पुस्तक 'इंडिया विंस फ्रीडम' (भारत ने आज़ादी जीती) और राम मनोहर लोहिया की पुस्तक 'गिल्टी मेन ऑफ इंडिया'ज़ पार्टीशन' पर ही आश्रित थे. चर्चा के दौरान जिन्ना के सम्बंध में मेरी कुछ अल्पज्ञ बातें भी मित्रों को अछूती जानकारी-सी लगती थीं. नब्बे के दशक के बीच दिल्ली में 'हंस' और 'जनसत्ता' के कार्यालयों में शनिवार के दिन चलती साम्प्रदायिकता पर चर्चाओं के दौरान सर्वप्रथम राजेंद्र यादव और उनके बाद सुधीश पचौरी ने मुझसे कहा कि मैं जिन्ना पर कुछ विस्तारपूर्वक लिखूं. विषय पर अपनी सीमाएं जानने के बावजूद मैंने 'हां' तो कह दिया, पर मैं जानता था कि इस विषय पर लिखना मेरे जैसे व्यक्ति के लिए कितना कठिन है. फिर तो यादवजी के तकाज़े शुरू हो गये. मैं अपने ही जाल में फंस गया था. अत: टाल-मटोल करने लगा. पर यादवजी ने रामबाण का प्रयोग किया. 'हंस' के एक अंक में अगले अंक के लिए मेरे लेख की घोषणा कर दी. जैसे यह काफी नहीं था. राजकमल प्रकाशन के निदेशक अशोक महेश्वरी को खबर लग गयी. उन्होंने फोन से बात तो बाद में की, पुस्तक (जिन्ना पर) छापने का अपना बालसुलभ उत्साह अपने पत्र के माध्यम से पहले ही प्रकट कर दिया. मैं सांसत में पड़ गया. अभी मैं मानसिक रूप से जिन्ना पर लिखने को पूरी तरह तैयार नहीं था. राजेंद्रजी को फोन कर उलाहना दिया कि घोषणा से पहले मुझसे पूछ तो लेते. उन्होंने पूरी सम्पादकीय दादागीरी से जवाब दिया, 'मैं समझ गया था. आप भले आदमी की तरह नहीं लिखेंगे.' बहरहाल उन्होंने सरेआम ढोल मुझ जैसे अज्ञानी के गले में लटका दी थी. उसे बजाने के अलावा, अपनी सीमाओं के शदीद अहसास के बावजूद अब कोई विकल्प नहीं था. बहरहाल, अगर इस ढोल की आवाज़ आपको बेसुरी लगे तो इसके लिए राजेंद्र यादवजी ज़िम्मेदार होंगे.

दरअसल, शुरू में पुस्तक की योजना नहीं थी. पर जैसे-जैसे 'हंस' मे आठ किस्तों में 'जिन्ना : एक पुनर्दृष्टि' शीर्षक के अंतर्गत

आठ धारावाहिक लेख छपने लगे, सुधी पाठकों के पत्र और फोन उन्हें पुस्तक-रूप में प्रकाशित करने के लिए आने लगे. सन् 1998 में दिल्ली से मेरे मुम्बई स्थानानंतरण के फलस्वरूप प्रकाशित सामग्री को परिवर्धित कर पुस्तक का रूप देने की योजना टलती गयी. पर विषय पर पढ़ना चलता रहा. इसी बीच 'जिन्ना और गांधी' शीर्षक से दो लेख हरिनारायणजी ने 'कथादेश' में छापे. पुस्तक का आग्रह फिर पुनर्जीवित हो उठा.

पुस्तक के लिखने में हैक्टर बोलिथो की 'जिन्ना : क्रिएटर ऑफ पाकिस्तान', स्टैनली वोलपर्ट की 'जिन्ना ऑफ पाकिस्तान', राजमोहन गांधी की 'अंडरस्टैंडिंग दि मुस्लिम माइंड', आयशा जलाल की 'दि सोल स्पोक्समैन', अकबर एस. अहमद की 'जिन्ना, पाकिस्तान एंड मुस्लिम आइडेंटिटी–दि सर्च फॉर सलादीन' और कानजी द्वारका दास की रत्ती जिन्ना पर उपलब्ध एकमात्र पुस्तक 'रत्ती जिन्ना' से बहुमूल्य सहायता प्राप्त हुई.

मेरा विश्वास है कि इतिहास, मात्र घटनाओं का संकुल और महत्वाकांक्षियों की नियति के उतार-चढ़ाव का दस्तावेज़ ही नहीं है. उसके विराट मंच पर उभरे काल-प्रेरित अभिनेताओं के मनोजगत की उथल-पुथल से संरचित व्यक्तित्वों के समझौते-टकराव और घात-प्रतिघात उसकी धारा को प्रभावित करने में निर्णयात्मक भूमिका निभाते हैं. कुछ इसी विश्वास के फलस्वरूप जिन्ना के जीवन पर विहंगम दृष्टि डालते हुए उन्हें उनके महत्वपूर्ण समकालीनों के साथ-साथ अलग-अलग समझने-परखने की कोशिश इस किताब में मिलेगी. अपनी अपात्रता, कमियों और सीमाओं का मुझे अपराधबोध की हद तक अहसास है. मेरी असफलता, मुझे यकीन है, बेहतर समझ के लोगों को इस विषय के साथ बेहतर न्याय के लिए प्रेरित करेगी. ❑

जिन्ना और गांधी

प्रायः हर मुद्दे पर असहमति के बावजूद गांधी-जिन्ना की मुलाकातें अत्यंत मैत्रीपूर्ण वातावरण में होती थीं. एक दिन बातचीत से थक कर जिन्ना ने अपने पैर के चकत्तों की बात छेड़ दी. गांधी ने कहा– जूते-मोजे उतारो. जिन्ना नहीं माने तो गांधी ने स्वयं जूते उतारने चाहे. तब कहीं जूते उतरे. अब दृश्य था– पूरी अंग्रेज़ी वेश-भूषा में कुर्सी पर संकोच से बैठे जिन्ना और फर्श पर खादी की धोती-चद्दर में अधनंगे गांधी! गांधी में करुणामय ईसा का कुछ अंश था.

नागफनी

डॉ राजेश दुबे

अनुज्ञा बुक्स, 1/10206 लेन नम्बर-1, वेस्ट गोरख पार्क, शाहदरा- 110032 मूल्य-395 `

41 व्यंग्य लेखों का यह संग्रह वर्तमान मानव जीवन की सच्चाई है जो हमें अपने भीतर झांकने का अवसर देती है. यहां लेखक अपने विचारों, अपनी बातों और कथन की पुष्टि में लोकजीवन के अपने अनुभवों को भी साझा करता है. इनमें व्यक्त नकारात्मक स्थितियों के बीच लेखक की सकारात्मक सोच भी स्पष्ट दिखाई देती है. ये लेख जीवन की दुर्बलताओं तथा समस्याओं के गर्भ में उतरने का रास्ता दिखाते हैं.

कोठा नंबर 64

राकेश शंकर भारती

अमन प्रकाशन, 104-A/80-C रामबाग, कानपुर-208012 मूल्य-225 `

यह पुस्तक तवायफों की ज़िंदगी पर आधारित 14 कहानियों का एक अनोखा संग्रह है. समाज में वेश्याओं को किस नजर से देखा जाता है, उनकी आर्थिक हालत, उनके जीवन संघर्ष, उनका शोषण और चाहे अनचाहे इस पेशे में आ जाने के कारण को प्रकट करती ये कहानियां, वेश्याओं के जीवन से जुड़े कई अज्ञात पहलुओं से रूबरू कराती हैं. कोठे के माहौल और वहां के लोगों की सोच और विचारधारा को इन कहानियों द्वारा समझा जा सकता है.

मैं नहीं लिखता कविता

संजय भारद्वाज

क्षितिज प्रकाशन, 16-कोहिनूर प्लाजा, एलफिंस्टन रोड, खड़की, पुणे, मूल्य - 100 `

83 कविताओं का यह संग्रह संवेदनशील हृदय की अनुभूतियों की अभिव्यक्ति है. इनमें जीवन और जगत की मार्मिक अनुभूतियों का बड़े ही कलात्मक ढंग से वर्णन हुआ है. इनमें अभिमन्यु, अश्वत्थामा, संजय, शकुनी, प्रहलाद, विक्रमादित्य, बेताल, गिलहरी, धूप जैसे अनेक प्रतीकों का सार्थक प्रयोग किया गया है. ये कविताएं सभ्य मानव समाज से जुड़े अनेक प्रश्नों की काव्यात्मक प्रस्तुति करती हैं.

होली

पंकज सुबीर

शिवना प्रकाशन पीसी लैब सम्राट कांप्लेक्स बेसमेंट, बस स्टैंड, सीहोर-466001, मूल्य-150 `

यह पुस्तक बहुचर्चित कहानीकार के पंकज सुबीर की प्रारम्भिक दौर में लिखी 21 कहानियों का संग्रह है. समय-समय पर अखबारों और पत्रिकाओं में प्रकाशित इन कहानियों में कहानीकार की लेखन की विकास यात्रा को भी समझा जा सकता है. सभी कहानियां कहीं ना कहीं होली के उत्सव से जुड़ी हैं और इनमें होली के रंग अपने भिन्न-भिन्न रूपों में दिखाई देते हैं और साथ ही दिखते हैं जीवन के कई रंग भी.

भारत में सुकरात

शिवरतन थानवी

वाग्देवी प्रकाशन
विनायक शिखर पॉलिटेक्निक कॉलेज के पास, बीकानेर 334003, मूल्य-240 `

लेखों के इस संकलन को पढ़ना शिक्षा के वास्तविक आशय, मूल्यबोध और व्यावहारिक समस्याओं के निजी अनुभव पर आधारित आकलन से गुजरना है. पुस्तक बताती है कि शिक्षा केवल परीक्षा पास करने-करवाने और किसी व्यवसाय के लिए ज़रूरी कौशल हासिल करने से बहुत व्यापक कार्य है. यहां शिक्षा जगत में लेखक द्वारा बिताये सार्थक समय और रोमांचकारी संस्मरण भी शामिल हैं जो हमें सोच-विचार की खुराक देते हैं.

बज उठी बसंत-बंसरी

विशालमूर्ति मिश्र 'विशाल'

प्रतिमा प्रकाशन, आर-2/29, रमेश पार्क, लक्ष्मी नगर, दिल्ली-110092, मूल्य-495`

यह पुस्तक तीन भागों में विभक्त है– विभिन्न भाव-भूमि की खड़ी बोली की रचनाएं, अवधी खड़ी बोली कि छंदबद्ध रचनाएं, सामाजिक-राजनीतिक विरूपताओं पर प्रहार करती हास्य व्यंग्य की रचनाएं. ये रचनाएं सकारात्मक विचार ऊर्जा एवं उमंगों-तरंगों से भरपूर हैं. इनमें प्राकृतिक छटा, पावस की घटा, सावन की रिमझिम फुहार, पुरवइया बयार, शारदी शोभा, पूस की रात, फागुन की मस्ती, बसंती बहार, देश, राजनीति, गांव, शिक्षा आदि विभिन्न विषयों को समाहित किया गया है.

सहजीवन

ओम प्रकाश शर्मा

शैलजा प्रकाशन, 57 पी कुंज बिहार-दो, यशोदा नगर, कानपुर, मूल्य- 195 `

इक्कीस कहानियों के इस संग्रह की कहानियां अलग-अलग भावभूमि को प्रकट करती हैं. परिवार, परंपरा, समाज, आधुनिकता, संघर्ष, चिंतन जैसी विविधताओं से पूर्ण ये कहानियां वर्तमान समाज का दस्तावेज हैं. शीर्षक कहानी सहजीवन यानी लिवइन की संकल्पना पर आधारित है लेकिन अंत में पारंपरिक जीवन-शैली में ढाल दी गयी है. यहां पात्रों द्वारा मानव मन की गहराइयों को व्यक्त किया गया है.

सीपियां हड़ताल पर

रेखा लोढ़ा स्मित

बोधि प्रकाशन, C-46 सुदर्शनपुरा इंडस्ट्रियल एरिया एक्सटेंशन, नाला रोड 22 गोदाम, जयपुर 302006, मूल्य-150`

हिंदी में ग़ज़ल के समानांतर सजल विधा में 101 गज़लों का यह संग्रह अपनी पहल और अनूठेपन के कारण भी अधिक पठनीय है. आरम्भ में सजल विधा की शुरूआत और उसकी बनावट से जुड़ी बातें हैं. यह न केवल सजल की भाषा और शिल्प के मानकों पर खरा है अपितु इसकी सजलें कथ्य की नवीनता, प्रासंगिकता, अपने संदेश और सजलों की कहन की कसावट पर भी अपनी श्रेष्ठता रखती हैं. कथ्य को प्रतीकों द्वारा अभिव्यक्त करने का सराहनीय प्रयास.

भवन समाचार

देवी सरस्वती की प्रतिमा का अनावरण

भवन **नागपुर केंद्र** के बी.पी. विद्या मंदिर, कोराडी में प्रतिमा अनावरण समारोह का आयोजन किया गया. यह प्रतिमा श्री बनवारीलाल पुरोहित (राज्यपाल, तमिलनाडु और ट्रस्टी भारतीय विद्या भवन तथा नागपुर केंद्र के चेयरमैन) द्वारा विद्यालय के परिसर में स्थापित की गयी. प्रो. यू.एच. जीवाजी (भारतीय विद्या भवन, नागपुर केंद्र की समिति के कार्यकारी सदस्य) ने कार्यक्रम की अध्यक्षता की. इस अवसर पर अनेक गणमान्य जन तथा संस्था के अन्य कर्मचारी बड़ी संख्या में शामिल हुए.

आचार्यों का सम्मान

भवन **कालीकट केंद्र** के चेयरमैन आचार्य श्री ईटीवी नायर और उनकी पत्नी आचार्य वनिश्री आनंदवल्ली अंगीपट का सम्मान किया गया. अवसर था उनकी विवाह की 70वीं वर्षगांठ का. स्नेहांजलि कम्युनिटी हॉल कालीकट में आयोजित इस समारोह का आयोजन आचार्यों के शिष्यों तथा उनके प्रशंसकों ने मिलकर किया था. प्रियदर्शन लाल (विजिटिंग प्रोफेसर, श्री शंकर संस्कृत विश्वविद्यालय, केरल) ने कार्यक्रम की अध्यक्षता की. श्रीमती हेमलता चंद्रन, श्री पी.वी. चंद्र की पत्नी (प्रबंध संपादक, मातृभूमि) ने दीप प्रज्वलित कर कार्यक्रम का आरम्भ किया. आचार्य श्री एम.आर. राजेश (कश्यप वेद अनुसंधान संस्थान के कुलपति) ने श्रीमती आनंदवल्ली अंगीपट को उनके पति आचार्य श्री ए.के.वी. नायर सहित भारत के विभिन्न स्थानों पर 200 से अधिक 'नवयज्ञ सप्ताह' करने के लिए 'ज्ञान प्रभा' पुरस्कार प्रदान किया.

भवन के पूर्व छात्रों द्वारा सहयोग

चंडीगढ़ केंद्र, भवन विद्यालय की पूर्व छात्र शाखा (बीओएसएस) ने पीपीई किट प्रदान करके चंडीगढ़ पुलिस बल को अपना सहयोग दिया. यह किट कोरोना से लड़ाई के लिए अत्यंत आवश्यक होता है. हर पीपीई किट में एक बॉडी सूट, फेस शील्ड, एन-95 मास्क और दस्ताना शामिल था. ऐसे 100 किट चंडीगढ़ पुलिस को दिये गये. श्री सी.ए. विनय अग्रवाल, (अध्यक्ष, भवन ओल्ड स्टूडेंट सोसायटी) और श्री करण महाजन, (वरिष्ठ कार्यकारी सदस्य, चंडीगढ़ पुलिस) ने मुख्यालय का दौरा किया और मुख्यालय के पुलिस अधीक्षक श्री मनोज मीणा को किट सौंपी. श्री मीणा ने बीओएसएस टीम और भवन विद्यालय को सहयोग के लिए आभार व्यक्त किया.

कुत्तों की प्रदर्शनी

भवन के **गुंटूर केंद्र** के सहयोग से गुंटूर केनाल क्लब ने एक डॉग शो की मेजबानी की. शो में विभिन्न नस्लों के लगभग 104 कुत्तों ने भाग लिया. श्री रमण कुमार(आईपीएस अधिकारी) मुख्य अतिथि थे और उन्होंने कुत्तों के साथ अपने जुड़ाव को याद किया. श्री रामचंद्र राजू (आयोजक और अध्यक्ष, केनेल क्लब) ने बताया कि इस आयोजन का उद्देश्य लोगों में पालतू प्रजातियों और उनकी विशेषताओं के विषय में जागरूकता पैदा करना है. समारोह में श्रीमती वी.एस. लक्ष्मीनारायण (सचिव, गुंटूर केनाल क्लब) सदस्य– श्रीमती गायत्री और कुमारी विन्या तेजस्विनी उपस्थित थीं. शो में प्रथम स्थान ट्रम्प बीगल, दूसरा कैप्टन डॉबरमैन और तीसरा अमेरिकी अकितालुसी ने प्राप्त किया.

भवन विद्यालय को सीसीपीसीआर पुरस्कार

दिव्यांग विद्यार्थियों और विशेष जरूरतों वाले विद्यार्थियों के उत्थान हेतु किये जाने वाले अपने प्रयासों के अंतर्गत, चंडीगढ़ के भवन विद्यालय ने प्रतिष्ठित सीसीपीसीआर पुरस्कार जीता. गवर्नमेंट मॉडल सीनियर सेकेंडरी स्कूल, सेक्टर-18 में आयोजित एक कार्यक्रम में चंडीगढ़ कमिशन फॉर प्रोटेक्शन ऑफ चाइल्ड राइट्स (सीसीपीसीआर) द्वारा यह पुरस्कार प्रदान किये गये. आयोग दल द्वारा विद्यार्थियों को प्रमाणपत्र एवं सोवेनियर दिया गया. 1987 में विद्यालय में स्थापित विशिष्ट प्रभाग द्वारा शिक्षा संबंधी दुर्बलताओं वाले विद्यार्थियों की सामाजिक और शैक्षणिक जरूरतों को पूरा करने के लिए प्रयास किया जा रहा है. ऐसे विद्यार्थी जो डाउन सिंड्रोम, ऑटिज्म, एडीएचडी और अन्य कई प्रकार के डिसऑर्डर्स से पीड़ित हैं, उन्हें यह संस्था अपने उच्चप्रेरित और विशिष्ट शिक्षा में अत्यंत अनुभवी लोगों द्वारा शिक्षा प्रदान करती है. यहां जीवन कौशल का बुनियादी ज्ञान, व्यावसायिक प्रशिक्षण भी दिया जाता है जो विद्यार्थियों को भावनात्मक और आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बना सके और उनका वित्तीय विकास कर सके.

चार छात्रों की उपलब्धि

भवन विद्यालय, चंडीगढ़ के विज्ञान धाराओं के चार छात्रों ने प्रतिष्ठित किशोर विज्ञान प्रोत्साहन योजना छात्रवृत्ति 2019 के लिए पात्रता प्राप्त की. चारों छात्रों ने पहले दो राउंड पार किये और साक्षात्कार राउंड पार किया, जिससे वह चयनित उम्मीदवारों की अंतिम सूची में आ गये. विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार द्वारा अनुसंधान करियर को आगे बढ़ाने के लिए असाधारण रूप से प्रेरित छात्रों को आकर्षित करने के लिए शुरू किये गये बुनियादी विज्ञान में फेलोशिप का एक सतत राष्ट्रीय कार्यक्रम है. केवीपीवाई को स्पष्ट करने वाले छात्र प्रतिष्ठित भारतीय विज्ञान संस्थान, बेंगलूरु में सीधे प्रवेश के लिए पात्र हैं.

भवन्स ने वर्चुअल रीयूनियन की सुविधा दी

भवन ओल्ड स्टूडेंट्स सोसाइटी (बीओएसएस), भवन विद्यालय, चंडीगढ़ की पूर्व छात्र शाखा ने अपना पहला वर्चुअल 'बीओएसएस कनेक्ट' एक ऑनलाइन टेलीकांफ्रेंसिंग प्लेटफॉर्म पर आयोजित किया. कठिन समय के बीच अपने अल्मा-मेटर के साथ फिर से जुड़ने के लिए स्कूल छोड़ने वाले छात्रों की सुविधा के लिए स्कूल के पूर्व छात्रों द्वारा इस आशय की कल्पना की गयी थी. ऐसे समय में जब सामाजिक दूरी के पालन के कारण लोगों का मिलना असंभव हो गया था. 'बीओएसएस कनेक्ट' के पहले संस्करण में 2000 बैच के छात्र एकत्रित हुए थे. 10 अलग-अलग देशों में रहने वाले स्कूल के पूर्व छात्रों ने भी इसमें उत्साहपूर्वक भाग लिया.

बापू धाम कॉलोनी के लिए राशन किट

महामारी के दौरान भवन ओल्ड स्टूडेंट्स सोसाइटी (बीओएसएस) द्वारा की गई सेवा पहल को आगे बढ़ाते हुए, चंडीगढ़ केंद्र भवन विद्यालय के छात्र समुदाय ने बापू धाम कालोनी में रहने वाले परिवारों को 500 'राशन किट' प्रदान किये. उन्होंने श्री मनदीप सिंह ब्रार(आईएएस, उपायुक्त, चंडीगढ़) सुश्री ऋचा गुप्ता (उपाध्यक्ष, बीओएसएस) प्रभा शर्मा(स्कूल हेड बॉय) और अरमान आंग्रा (उपाध्यक्ष) से मुलाकात की. इस राशन किट में चावल, दाल, शक्कर, नमक, चाय और तेल शामिल था.

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्। वेदो नित्यमधीयताम्।
वेदा: वयं व: शरणं प्रपन्ना:। वेदा ये न: परं धनम्।।

अद्वैत विद्याचार्य महाराजा साहेब

श्री गोविन्द दीक्षितर पुण्य स्मरण समिति (पंजीकृत)

'**श्री गोविंद दीक्षिता घटिका स्थानम**' 29-30, ईस्ट अयन स्ट्रीट, (प्रवेश योगासलाई मार्ग से) कुम्बकोणम्, तमिलनाडु-612001 भारत. टेली नं. (कार्यालय) (0435) 2425948, 2401789, पाठशाला: 2422866, 2401788, Email: rajavedapatasala@gmail.com
Website: www.rajavedapatasala.org

वेद और शास्त्र निहित धरोहर को प्राचीन पारम्परिक गुरुकुल प्रणाली द्वारा सुरक्षित रखने के लिये निवेदन

राज वेद काव्य पाठशाला, कुम्बकोणम् की स्थापना ई.स. 1542 में तीन नायक राजाओं के प्रधानमंत्री **संत अद्वैत विद्याचार्य महाराजा साहेब भगवान श्री गोविन्द दीक्षितर** ने की. यह तांजोर स्थित पवित्र कावेरी नदी के दक्षिणी तट पर स्थित है. जिसका उद्देश्य है वेदों और शास्त्रों का प्रचार-प्रसार. यह तमिलनाडु स्थित पूरे भारत वर्ष में एकमात्र पाठशाला है, जो बिना किसी रुकावट 471 वर्षों से कार्यरत है. यहां निर्धारित पाठ्यक्रम के तहत तीनों वेद-ऋग्, यजु (शुक्ल और कृष्ण) तथा सामवेद की शिक्षा एक ही संकुत के नीचे 8-12 वर्ष के बाल-विद्यार्थियों को दी जाती है. यहां 155 विद्यार्थियों को छह से दस वर्ष तक प्रशिक्षण दिया जाता है. आवास-निवास, खान-पान, यात्रा व शिक्षा की सुविधा आदि समिति अपनी ओर से मुफ्त में करती है. इन विद्यार्थिओं को पाठशाला के 14 वरिष्ठ अध्यापकों के सान्निध्य में वेद-शास्त्रों की शिक्षा दी जाती है. वैदिक शिक्षा की सफल समाप्ति पर उन्हें वेद व शास्त्रों की उच्चतर शिक्षा के लिए पाठशाला के विद्वान अध्यापकों द्वारा प्रोत्साहित किया जाता है.

पाठशाला की इन सब गतिविधियों पर होने वाले बढ़ते व्यय के निरूपण हेतु कांची के कामकोटि मठ के श्री जयेंद्र सरस्वती स्वामिगल द्वारा दि. 21-6-2004 को नवनिर्मित पाठशाला भवन **श्री गोविंद दीक्षितर घटिका स्थानम्** (13,500 वर्ग फीट) को वैदिक विद्यार्थियों हेतु समर्पित किया गया.

पाठशाला के बढ़ते हुए खर्च की समस्या कम करने हेतु निम्नलिखित योजनाओं के अंतर्गत अनुदान का स्वागत है, कृपया अपना फोन नं: (STD कोड के साथ) मोबाइल नम्बर/इ-मेल पूरा पत्ता व पिन कोड अवश्य लिखें.

योजना का नाम	अनुदान (आंशिक व्यय)	स्थाई अनुदान
वैदिक विद्यार्थी भोज (समाराधना)		
घरेलू भोजन	रु. 700/-	रु. 9000/-
विशेष समाराधना	रु. 2500/-	रु. 30,000/-
चावल और दाल हेतु - (75 किलोग्राम)	रु. 1600/-	रु. 20,000/-
वेद (शिक्षा एवं संक्षण हेतु) प्रति विद्यार्थी	रु. 12,000/- प्रतिवर्ष	रु. 1,50,000/-

अनुदान क्रास चेक, डी.डी. '**ए.वी.एम.एस.जी.डी.पी.एस. समिति**' के पक्ष में 'कुम्बकोणम्' पर देय होना चाहिए. पत्राचार हेतु उपरोक्त पते पर अध्यक्ष एवं कोषाध्यक्ष से सम्पर्क करें.

डिजिटल संप्रेषण और साहित्य पर अंतरराष्ट्रीय वेबिनार संपन्न

हिंदी हैं हम विश्व मैत्री मंच, हैदराबाद के तत्वावधान में 'तकनीकी व डिजिटल संप्रेषण की दुनिया में हिंदी साहित्य के बढ़ते कदम' विषय पर एकदिवसीय अंतरराष्ट्रीय वेबिनार सफलतापूर्वक आयोजित किया गया. हैदराबाद केंद्र से संचालित अंतरराष्ट्रीय वेबिनार में ऋषभदेव शर्मा ने मुक्त वितरण के लिए तकनीकी के उपयोग की जानकारी देने के साथ ही विभिन्न आधुनिक संचार माध्यमों में स्टोरी-टेलिंग की तुलना करते हुए 'डिगिंग' और 'स्प्रेडिंग' की अवधारणाओं का खुलासा किया. वरिष्ठ साहित्यकार श्री तेजेंद्र शर्मा ने कहा कि डिजिटल एवं ऑनलाइन संचार ऐसी क्रांति है, जो निःसंदेह देश को प्रगति के पथ पर त्वरित गति से ले जा सकती है. इसी का लाभ आज हिंदी साहित्य उठा रहा है.

मंच के महासचिव डी. विद्याधर ने कोरोना महामारी के काल में भी हिंदी का अलख जगाने की पुरजोर अभिव्यक्ति की. अध्यक्ष मो. रियाजुल अंसारी ने मंच के हिंदी के प्रचार-प्रसार कार्यक्रमों की जानकारी दी. इसके अतिरिक्त राजेश अग्रवाल, राकेश शर्मा, सुषमा देवी, डी. जयप्रदा तथा सुरेश कुमार मिश्रा ने भाग लिया.

साहित्यिक परिचर्चा का आयोजन

आत्माराम कॉलेज (दिल्ली) के तत्वावधान में (जूम एप से लाइव) वेबिनार के माध्यम से साहित्यिक परिचर्चा का आयोजन किया गया. परिचर्चा में कमलेश वर्मा की पुस्तक 'जाति के प्रश्न पर कबीर' एवं श्रीधरम की रचनाओं पर चर्चा की गयी. कमलेश वर्मा ने 'जाति के प्रश्न पर कबीर' के बारे में बताया कि दलित विमर्श में कबीर को लेकर चिंतन की समस्याओं ने उन्हें लिखने के लिए प्रेरित किया. वहीं श्रीधरम ने अपने वक्तव्य में साहित्य से जुड़ाव एवं अपने रचना-प्रक्रिया के उद्भव पर प्रकाश डाला. वेबिनार में राजकुमार, ज्ञानेंद्र कुमार, राजमोहिनी सागर, सोनिया मांगे, राजेश चंद आदर्श, तरुण सिंह, करुणाकर पाण्डेय आदि कार्यक्रम में शामिल हुए. कार्यक्रम का संचालन अरविंद मिश्र और समापन अजीत कुमार ने किया.

बोधकथा

झंडे की जगह झाड़ू

यह घटना तब की है जब बापू उड़ीसा में हरिजन-यात्रा कर रहे थे. दलितों के सवर्णों की घृणा को दूर करने के उद्देश्य से आयोजित चल रही पद-यात्रा में एक युवक कांग्रेस का झंडा लेकर आगे-आगे चल रहा था. गांधीजी को यह बात कुछ अनुचित लगी. उन्होंने कहा, कुछ और होना चाहिए प्रतीक इस यात्रा का. साथ चल रहे एन.आर. मलकानी और वियोगी हरि को उन्होंने कहा, 'तुम दोनों अपने हाथ में झाड़ू ले लो. यह स्वच्छता का प्रतीक भी होगा और इसे देखकर लोग समझ जाएंगे कि हरिजन अछूत नहीं हैं.'

यह सुनकर वियोगी हरि थोड़ा चौंके तो बापू ने कहा, 'हमारे आंदोलन का मकसद भी लोगों के हृदयों में और उससे बाहर की गंदगी को साफ़ करना है. झाड़ू का प्रतीक इस आंदोलन का सटीक चिह्न है.'

और उस यात्रा में झंडे की जगह झाड़ू 'लहरा' रहा था!

Printed and Published by P.V. Sankarankutty on behalf of Bharatiya Vidya Bhavan, printed at Maoolee Prints & Arts, Gala No. 9/A, Ground Floor, Byculla Service Industrial Estate, D.K. Cross Road, Byculla (East), Mumbai - 400 027 and published for Bharatiya Vidya Bhavan, Plot No. 33/35, Gr. + 4 Floor, K.M. Munshi Marg, Chowpatty, Mumbai - 400 007. **Editor : Vishwanath Sachdev**